कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास को समर्पित

वार्षिक मूल्य : 100 रुपये

वर्ष 54 अंक : 3 जनवरी 2008 मूल्य : 10 रुपये

वृक्ष लगाओ - पर्यावरण बचाओ

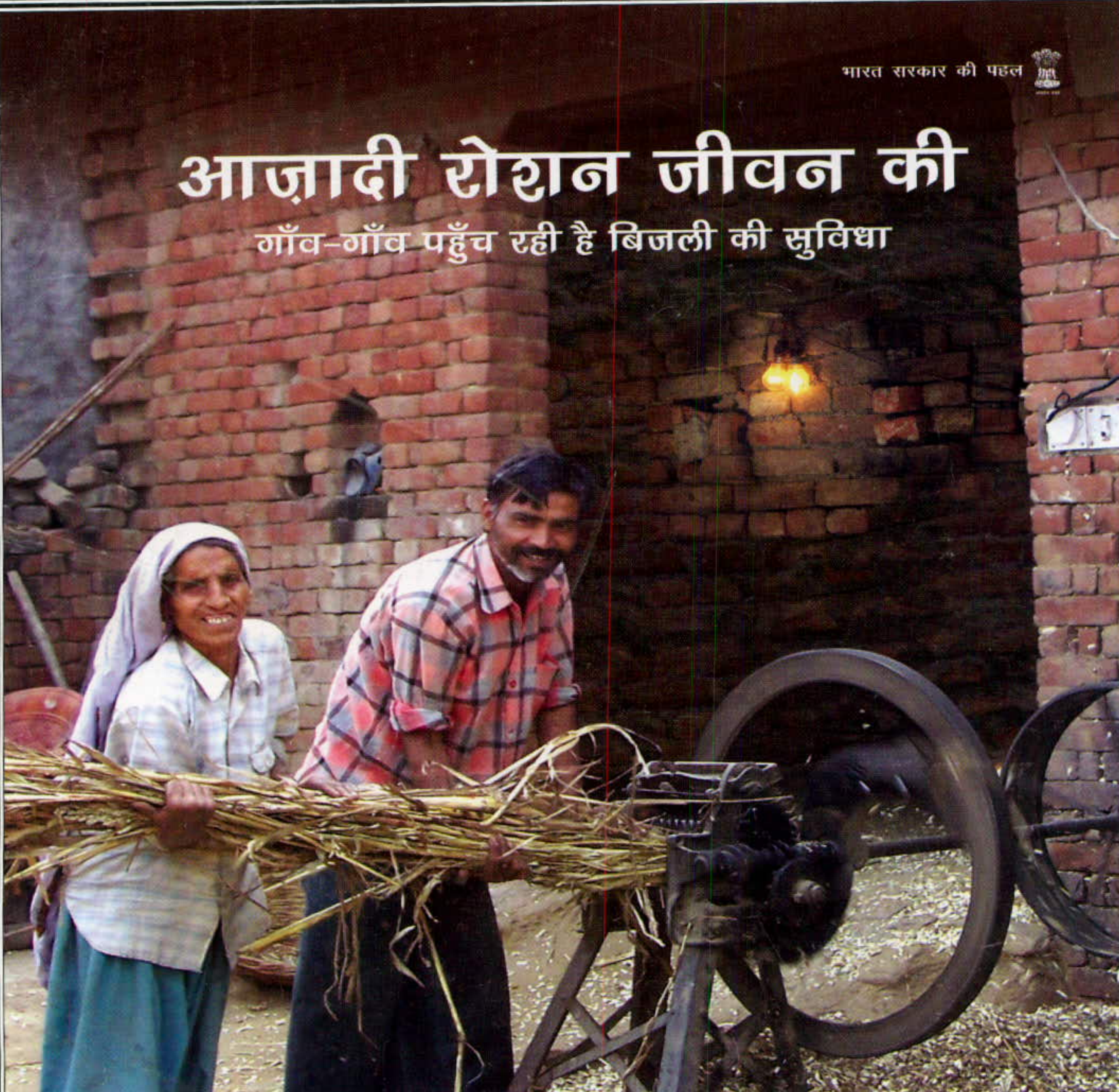

राजीव गाँधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना से हो रहा है भारत का निर्माण

► भारत निर्माण के अंतर्गत देश के सभी गाँवों तक बिजली पहुँचाई जा रही है ► दो सालों में 43,100 गाँवों को बिजली की सुविधा

भारत निर्माण
चलें नयी आज़ादी की ओर

भारत निर्माण | राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम | सर्व शिक्षा अभियान | राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन

davp 22201/13/0050/0708

KH-01/08/02

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 54 ★ मासिक अंक ★ पृष्ठ : 48

पौष–माघ 1929, जनवरी 2008

सम्पादक

कैलाश चन्द मीना

संपादकीय पत्र–व्यवहार

संपादक, कुरुक्षेत्र

कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग,

गेट नं. 5, निर्माण भवन

ग्रामीण विकास मंत्रालय

नई दिल्ली–110011

दूरभाष : 23061014, 23061952

फैक्स : 011–23061014, तार : ग्राम विकास

वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in

ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)

एन.सी. मजुमदार

व्यापार प्रबंधक

जगदीश प्रसाद

दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

ई–मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

आवरण एवं सज्जा

संजीव सिंह और रजनी दवे

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

कुरुक्षेत्र

इस अंक में

★ गहराता पर्यावरण संकट	डॉ. नीरज कुमार राय	4
★ मानव विकास की कीमत देता पर्यावरण	राहुल धर द्विवेदी	8
★ पर्यावरण संरक्षण आज की जरूरत	डॉ. एल.के. इदनानी	11
★ ओजोन परत का बढ़ता क्षरण	विनोद कुमार यादव	15
★ ग्लोबल वार्मिंग का धरती पर प्रभाव	मयंक श्रीवास्तव	19
★ उत्तराखण्ड में भूस्खलन संवेदनशीलता	डॉ. वेदप्रकाश एवं डॉ. प्रतिमा पाण्डेय	25
★ सामाजिक वानिकी और पंचायत	डॉ. निर्मल कुमार आनंद	30
★ लवणीय भूमि के लिए वृक्षों की कुछ बहुउपयोगी प्रजातियां	डॉ. अरविन्द सिंह	35
★ थारू जनजाति : एक सांस्कृतिक पहचान	तीर्थ प्रकाश और संतोष कुमार सिंह	38
★ लघु एवं सीमान्त कृषक तथा ग्रामीण विकास	डॉ. सतीश चन्द्र दुआ एवं नरेश कुमार गुप्ता	42
★ पौष्टिक तत्वों से भरपूर रोग निवारक अंगूर	जगनारायण	46

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

संपादकीय

भारत की धरा प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से विश्व में अनूठा स्थान रखती है। जीवन की कैसी विडंबना है कि जिस प्रकृति ने हमें शुद्ध जल, वायु और हरी–भरी धरती दी है उसे हमने भौतिक सुख–साधनों की प्राप्ति के लिए अनेक कल–कारखाने लगाकर प्रदूषित कर दिया है। खेद का विषय है कि आज हम वन संरक्षण के प्रति न केवल उदासीन हो गए हैं बल्कि उनकी अंधाधुंध कटाई करके अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। वनों को काटकर शानदार बस्तियां बसाई जा रही हैं।

वन हमारे जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं, जिसकी हर कीमत पर रक्षा की जानी चाहिए। वन वातावरण में व्याप्त कार्बन डाइआक्साइड सोखने के साथ हमें जीने के लिए आक्सीजन प्रदान करते हैं। वनों के कारण ही वर्षा होती है। भूमि को बंजर होने से बचाने, भू–क्षरण व पर्वत–स्खलन रोकने के लिए वन संरक्षण जरूरी है।

ग्लोबल वार्मिंग की वजह से धरती के तापमान में वृद्धि हुई है। ध्रुवों पर बर्फ तेजी से पिघलने लगी है जिसके कारण समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है। ओजोन परत के क्षरण के कारण पराबैंगनी किरणों के दुष्प्रभाव बढ़ने लगे हैं। न केवल मानव जीवन बल्कि पशु–पक्षी और वनस्पतियों पर भी प्रदूषित पर्यावरण अपना प्रभाव डाल रहा है। कई दुर्लभ प्रजातियां नष्ट हो चुकी हैं। पशु–पक्षियों की संख्या घट रही है। जहरीला पानी जलचरों को नष्ट कर रहा है। पर्यावरण प्रदूषण से वातावरण धीरे– धीरे विषाक्त हो रहा है साथ ही अचानक आने वाले प्राकृतिक प्रकोप जैसे बाढ़, सूखा, समुद्री तूफान, भूकंप, झंझावात आदि भी बढ़े हैं। पिछले 20 वर्षों में मौसम संबंधी आपदाओं में 4 गुना बढ़ोतरी हुई है। आंकड़ों के अनुसार अब प्रति वर्ष लगभग 500 आपदाएं घटित होती हैं।

पर्यावरण पर बढ़ता खतरा हमारी वर्तमान जीवनशैली का परिणाम है और इसे बचाने के लिए हमें अपनी जीवन शैली में सुधार करना होगा। परिवहन व्यवस्था में सुधार करना होगा, निजी वाहनों का उपयोग कम करना होगा। प्राचीन भारतीय स्थापत्यकला से भवन निर्माण करने होंगे जिससे एसी, कूलर, पंखें आदि का उपयोग कम हो। विलासिता का जीवन त्याग कर प्राकृतिक जीवनशैली अपनानी होगी तभी हम खुद को नष्ट होने से बचा सकते हैं।

इस अंक में हमने कृषि, स्वास्थ्य व ग्रामीण विषयों के साथ–साथ पर्यावरण व प्रदूषण से संबंधित समस्याओं व उनके समाधानों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। हमारा यह प्रयास तभी सार्थक होगा जब सभी नववर्ष के शुभारंभ में प्राकृतिक व सादगीपूर्ण जीवन की शुरुआत का प्रण लेकर इस धरा को बचाने का संकल्प लेंगे।

सभी पाठकों को नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएं ।

मत सम्मत

मैं सिविल सेवा की तैयारी कर रहा हूं और ग्रामीण विकास को समर्पित इस अनमोल पत्रिका 'कुरुक्षेत्र' को पिछले चार वर्षों से लगातार पढ़ रहा हूं। इसमें प्रकाशित सभी लेख हमारे लिए कितने ज्ञानदायक और उपयोगी हैं, इसको बता पाना वैसे ही है, जैसे गूंगे व्यक्ति को गुड़ खिला कर यह पूछना की भाई गुड़ में मिठास कितनी है? नवम्बर 2007 का बाल श्रम को समर्पित अंक विशेषकर संदीप जी का लेख 'बाल श्रमः एक कलंक' तथा हिमांशु शेखर जी का 'संकट में बचपन' लेख अति प्रशंसनीय है। आशा है आप ऐसे अंकों का आगे भी प्रकाशन करते रहेंगे।

दिग्विजय कुमार 'प्रवीण' मुखर्जी नगर, दिल्ली

नवम्बर 2007 के अंक का गहन अध्ययन करने के बाद जो आंकड़ा सामने उभर कर आता है, वह चिन्तनीय है। अन्य देशों की अपेक्षा भारत में बाल श्रमिकों की संख्या अधिक है। इसका एक मात्र कारण गरीबी और अशिक्षा है। गरीबी के कारण ही मजबूरन हमारे भारत के 20 लाख से अधिक बच्चे यौन कर्मी के रूप में कार्य कर रहे हैं। डॉ. सुशील कुमार गौतम ने बाल श्रम उन्मूलन हेतु सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास जो विस्तृत आंकड़ों के साथ प्रस्तुत किए हैं, वह बहुत ही सराहनीय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही बाल श्रम के उन्मूलन के लिए विभिन्न योजनाओं के लागू होने के बाद भी इस पर सफलता नहीं हासिल हो पायी है, जो बहुत ही चिन्तनीय है।

अजय कुमार शर्मा, गिरिडीह (झारखण्ड)

कुरुक्षेत्र में नवम्बर 2007 का अंक "उज्ज्वल भविष्य की तलाश" विशेषांक पढ़ा तो पता चला कि इण्डोनेशिया, ब्राजील, संयुक्त राज्य अमेरिका, पाकिस्तान, बांग्लादेश व रूस से ज्यादा बाल श्रमिकों की संख्या भारत में है और विश्व के 25 करोड़ बालश्रमिकों में से लगभग 10 करोड़ भारत में है। यह किसी भी देश के लिए बहुत बड़ी क्षति है कि जो बच्चे किसी देश के आने वाले कल का भविष्य होते हैं आज उनका यह हश्र हो रहा है।

मैं सम्पादकीय की उस पंक्ति से पूर्णतया सहमत हूं कि बालश्रम का समाधान केवल सरकारी प्रयास नहीं हो सकते बल्कि प्रत्येक नागरिक को सरकारी योजनाओं को सफल बनाने के लिए कदम से कदम मिला कर चलना होगा। तभी इसका लाभ जरूरत मंदों तक पहुंच पायेगा और इन योजनाओं का जो उद्देश्य है वो सही मायने में पूरा हो पायेगा। इस समाज के प्रति हम सब का परम कर्त्तव्य है कि हम इस समाज के लिए अच्छा करें। तभी हमारा हर आने वाला कल सुनहरा होगा। अतः समाज का विकास हम सबसे है और हम सब इस समाज से।

सरोजनी भारती, कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर

अपने देश में बच्चों की वास्तविक स्थिति के बारे में पढ़ा। पढ़ने से पूर्व सुभद्राकुमारी चौहान की मेरा बचपन की यह पंक्ति स्मरण हो आयी थी 'जिसे खोजती थी बरसों से, अब जाकर उसको पाया। भाग गया था मुझे छोड़कर वह बचपन फिर से आया।' लेकिन इस अंक को पढ़ने के बाद सभी सपने कांच की तरह चकनाचूर हो गये। जिस देश में लगभग आधे बच्चे कुपोषण का शिकार हैं जिन्हें दैनिक आवश्यकता (उचित आहार आदि) की पूर्ति होती ही नहीं है उन्हें बुनियादी सुविधा तो एक दिवास्वप्न की तरह ही लगेंगे। यही है भारत का वर्तमान तो कोई भी इस तरह का बचपन नहीं चाहेगा। जिसमें दूध की जगह बाजरे की रोटी मुंह में हो और कलम–कॉपी की जगह धुएं की भट्टी में हथौड़ा चलाता पसीने से लथ–पथ छोटा सा उदास चेहरा।

विभास कुमार मिश्र, गांधी विहार, दिल्ली–9

बाल श्रम की भीषण समस्या के निदान के लिए अनेक स्तरों पर प्रयास किए जाते रहें हैं। पर, असल चीज़ है इन प्रयासों के प्रचार–प्रसार और समस्या की गंभीरता को लोगों तक पहुंचाने की। कुरुक्षेत्र का नवंबर अंक आंकड़े, और विश्लेषण के स्तरों पर बालश्रम की इस भीषणता को सफलतापूर्वक चित्रित और चिन्हित करती है। संदीप कुमार के लेख में पेट, स्लेट और प्लेट के बीच जारी जंग की चर्चा आयी है। उन्होंने तो एक शानदार मुहावरा ही गढ़ दिया है। फीचर के रूप में लिखित इनका लेख 'बाल–श्रमः एक कलंक' अच्छा लगा। बाल श्रम उन्मूलन के लिए चल रही योजनाओं पर उमेश चन्द्र अग्रवाल का लेख 'गागर में सागर' सरीखा प्रतीत हुआ।

पत्रिका के अंत में आपने आगामी अंकों के बारे में जो सूचना दी है उसकी जरूरत हम शिद्दत से महसूस कर रहे थे। कृपया इस प्रयास को आगे भी बनाए रखिए।

चन्दन शर्मा, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली

बाल विकास पर आधारित नवंबर 07 का कुरुक्षेत्र का अंक पढ़ा। देश का भविष्य कहे जाने वाले बच्चों का वर्तमान इस प्रकार का भी हो सकता है। यह एक विचारणीय प्रश्न है। पत्रिका ने इस प्रश्न को बड़ी शिद्दत से उठाया है और उसके कारण तथा निवारण को भी प्रस्तुत किया है। 'ग्रामीण बच्चों के लिए कल्याणकारी योजनाएं' लेख में डा. उमेश चन्द्र अग्रवाल ने सरकारी योजनाओं की अच्छी जानकारी दी है। 'संकट में बचपन' लेख में बच्चों से संबंधित कई पहलुओं को उभारा गया है। कुल मिलाकर पत्रिका के सभी लेख पसंद आए। आशा है भविष्य में ऐसे ही महत्वपूर्ण व सामाजिक विषयों पर उत्कृष्ट सामग्री पढ़ने को मिलेगी।

कमल शुक्ल, फिरोजाबाद, उ.प्र.

'उज्ज्वल भविष्य की ओर' शीर्षक से सुसज्जित कुरुक्षेत्र नवंबर 07 का अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका ने बच्चों, विशेषकर भीख मांगने वाले बच्चों, बाल मजदूरों, चाय आदि की दुकानों पर काम करने वाले बच्चों व चौराहों पर अखबार बेचते बच्चों के प्रति मेरी भावनाओं को पूर्णतः बदल दिया है। बाल श्रम व बाल मजदूरी वास्तव में समाज के लिए कलंक है। मैं संपादक महोदय के इस आह्वान से सहमत हूं कि बाल श्रम का उन्मूलन सिर्फ सरकार का दायित्व नहीं है। इसके लिए हर नागरिक को प्रयास करना होगा। बाल श्रमिकों को तैयार करने में सामाजिक परिस्थितियों व स्वार्थी लोगों का ही हाथ होता है। अतः समाज को एकजुट होकर बचपन को बचाने का प्रयत्न करना चाहिए। पत्रिका के कई लेख 'बाल श्रमः एक कलंक', 'बाल श्रमः समस्या कारण एवं दुष्प्रभाव', 'बाल श्रमिक एक सामाजिक अभिशाप' आदि आंखें खोल देने वाले हैं।

प्रवीण कुमार, अलवर, राजस्थान

गहराता पर्यावरण संकट

डॉ. नीरज कुमार राय

प्राकृतिक पर्यावरण की महत्ता अद्यतन समाज में, स्वयं एक प्रश्नचिन्ह या मुद्दे बनकर उभर रही है। अनवरत बढ़ती जन चेतना वायु व जल प्रदूषण, गैस दुष्प्रभाव, ओजोन परत की समस्या, कचरा व्यवस्थापन, आणविक ऊर्जा, अति जनसंख्या तथा तेल रिसाव इत्यादि से सभी समस्यायें जीवन की गुणवत्ता व ब्रह्माण्ड में पृथ्वी के अस्तित्व का संभावित चिन्ह प्रस्तुत करती है। पर्यावरण जो कि पृथ्वी पर पाये जाने वाले जीवधारियों के आवरण या खोल के संबंधों को प्रतिपादित करता है, विविध प्रकार से जीवधारियों को प्रभावित कर स्वयं जीवधारियों से प्रभावित भी होता है। यह विकास एवं विनाश की एक समग्रकारी व्यवस्था है जो संतुलन को स्वयं प्राकृतिक प्रकार्यों के माध्यम से बनाये रखती है, लेकिन यह संतुलन आज समाप्त प्रायः है। पर्यावरण अनेक संकटों से ग्रस्त है।

अगर एक नजर पर्यावरण संकट पर डालें तो स्पष्ट है कि विश्व की करीब एक चौथाई जमीन बंजर हो चुकी है और यही रफ्तार रही तो सूखा प्रभावित क्षेत्र की करीब 70 प्रतिशत जमीन कुछ ही समय में बंजर हो जायेगी। यह खतरा इतना भयावह है कि इससे विश्व के 100 देशों की एक अरब से ज्यादा आबादी का जीवन संकट में पड़ जायेगा। पर्वतों से विश्व की आधी आबादी को पानी मिलता है। हिमखण्डों के पिघलने, जंगलों की कटाई और भूमि के गलत इस्तेमाल के चलते पर्वतों का पर्यावरण तंत्र खतरे में है। विश्व का आधे से अधिक समुद्रतटीय पर्यावरण तंत्र गड़बड़ा चुका है। यह गड़बड़ी यूरोप में 80 प्रतिशत और एशिया में 70 प्रतिशत तक पहुंच चुकी है। मछली पालन से विश्व के करीब 40 करोड़ लोगों की आजीविका चलती है। इस समय दुनिया करीब 75 प्रतिशत मत्स्य क्षेत्र का दोहन कर रही है, जिससे मछली आपूर्ति का संकट बरकरार है। दुनिया भर की करीब एक चौथाई मूंगे की चट्टानें ओर नष्ट हो जायेंगी। यही रफ्तार रही तो आने वाले 10 वर्षों में 20–30 प्रतिशत चट्टानें और नष्ट हो जायेंगी। इन चट्टानों के न होने से समुद्री खाद्य प्रणाली की कड़ी टूट जायेगी और सारे समुद्री जीवों का जीवन संकट में होगा। आंकड़े बताते हैं कि हाल के दिनों में वायुमण्डल में मिलने

ब्रह्म कमल (सोसूरिया लापा) – एक लुप्त होती प्रजाति

वाली कार्बनडाई–आक्साइड गैस की मात्रा तेजी से बढ़ी है। वायुमंडल में जाकर यह गैस 100 वर्षों तक ज्यों की त्यों बनी रहेगी जो काफी खतरनाक साबित हो सकती है। वर्ष 1900 के मुकाबले समुद्री तल करीब 10 से 20 सेंटीमीटर के बीच बढ़ चुका है। इसके कारण समुद्री हवाओं की मार से करीब 4.6 करोड़ लोग प्रतिवर्ष प्रभावित होते हैं। यदि समुद्रतल बढ़कर 50 सेंटीमीटर हो गया तो इसकी चपेट में विश्व की 10 करोड़ आबादी आ जायेगी। पर्यावरण के नष्ट होने से करीब 800 करोड़ से ऊपर प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं और यह सिलसिला जारी रहा तो करीब 11000 प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा बढ़ जायेगा।

लाल पाण्डा – एक संकटापन्न प्रजाति

सामाजिक संकट के रूप में पर्यावरण संकट

पर्यावरण संकट एक प्रकार से अपने विविध स्वरूपों के कारण सामाजिक संकट है जो कि सामाजिक संगठन की संरचना में परिवर्तनों की वजह से अभिलक्षित होता है। यह सामाजिक संकट क्यों है? इसका प्रथम कारण यह है कि यह सामाजिक रूप से उत्पन्न होता है। जीवनस्तर को व्यवस्थित करने के लिये व्यक्तियों द्वारा किये गये कार्यों व व्यवसाय, उद्योग, सरकारी व्यवसायिक व राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा करने हेतु किये गये कार्यों से यह संकट उत्पन्न होता है। दूसरा कारण यह है कि – इसका संभावित समय में नकारात्मक परिणाम मानव प्राणियों तथा अन्य जीवों, जानवरों व पौधों पर पड़ता है। यह प्रभाव वैश्विक होता है। इसका तीसरा कारण है कि इस समस्या का निर्धारक प्रभाव वैश्विक है लेकिन शक्तिशाली राज्य व संघ चतुराई पूर्वक इस सार्वभौमिक समस्या को नकारते हैं। औद्योगीकृत पश्चिमी देश अपने पर्यावरणीय कचरे को तृतीय विश्व के देशों में स्थानान्तरित कर संकट का सारा श्रेय उन पर मढ़ देते हैं। उपयुक्त नीति–नियामकों की कमी व विकास की निम्न सीमा के कारण तृतीय विश्व के समाज में यह भयावह संकट का रूप धारण करता है। हालांकि अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में पर्यावरण संकट एक सामाजिक समस्या न होकर एक राजनीतिक, आर्थिक व वर्ग मुद्दे के रूप में प्रचलित है।

क्या है पर्यावरण संकट का कारण?

पर्यावरण संकट का प्रथम व सबसे बड़ा कारण उच्च उपभोक्तावादी संस्कृति है। यह उपभोक्तावादी संस्कृति ऐसे प्रलोभनकारी उद्योग को विकसित करती है जो कि सेवाओं व वस्तुओं से संबंधित अभीष्ट इच्छा की पूर्ति करता है। इस उपभोक्ता संस्कृति का मूल उद्देश्य इसमें निहित होता है कि वह अधिक से अधिक मात्रा में अपनी जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्यावरण संसाधनों का दोहन कर सके। वह इसे जन्मजात अधिकार के रूप में देखता है तथा भौगोलिक अध्येता भी इस दिशा में पर्यावरणवाद व भविष्यवाद की द्वन्दता को स्वीकार करते हैं क्योंकि व्यक्तियों की आर्थिक आत्मीयता, प्राकृतिक उद्देश्यों को नकारती है।

दूसरा कारण वनों का दिनों–दिन कम होना है। दुनिया के कुल भू–क्षेत्र का करीब 30 प्रतिशत वन क्षेत्र है। दुनिया भर में 9.8 अरब एकड़ में फैले वन क्षेत्र का लगभग दो–तिहाई भाग रूस, ब्राजील, कनाडा, अमरीका, चीन, आस्ट्रेलिया, कांगो, इंडोनेशिया, अंगोला तथा पेरू जैसे 10 देशों में सिमटा हुआ है। 20वीं शताब्दी के आखिरी दशक में ही प्रतिवर्ष करीब 3.8 करोड़ एकड़ वन क्षेत्र समाप्त हुआ। लाख प्रयत्नों के बावजूद 2.4 करोड़ एकड़ वन क्षेत्र प्रतिवर्ष समाप्त होता आ रहा है। यह रफ्तार रही तो आने वाले 40–50 वर्षों में धरती से पेड़ पौधों का नामो–निशान मिट जायेगा। इन वनों की विनाश लीला ने लोगों के जीवन को प्रभावित किया है।

तीसरा कारण जब प्राकृतिक स्रोत सीमित हो तथा जनसंख्या सीमित हो तो यह संसाधन का कार्य करती है लेकिन इनके मध्य असंतुलन, पर्यावरण के लिये संकट है। जनसंख्या जब बिना प्रभावकारी राजनीतिक, आर्थिक नीति के तीव्र गति से बढ़ती है तब साधन सीमित हो जाते हैं तथा भोजन, स्वास्थ्य सेवाओं में कमी तथा साथ ही साथ जीवन प्रत्याशा में कमी, मृत्युदर में वृद्धि होती है। जनसंख्या के दबाव में वनों का दोहन, भूमि का अधिक अधिग्रहण, ओजोन क्षरण, जैवविविधता में क्षरण, ग्रीन हाऊस गैसों में वृद्धि, जलप्लावन, लवणीकरण, उसरीकरण, अम्लवर्षा की भूमिका बढ़ती जाती है।

चौथा कारण जैसे–जैसे समाज में और विशेषतः प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा है वैसे–वैसे मनुष्य और पर्यावरण के मध्य अन्तःक्रिया ने एक खतरनाक मोड़ ले लिया है। वायु, जल, वायुमण्डल, वन, नदियां, पौधे और प्रकृति के अनेक तत्वों को प्रौद्योगिकी क्षमता ने प्रभावित किया है। क्योंकि इन्हीं की बदौलत प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हुआ है और इनके अति दोहन ने पर्यावरण के सामंजस्य को विचलित कर दिया है। आज स्वास्थ्य, सुरक्षा भावना की कमी जैसी समस्याएं प्रादुर्भूत हुई हैं जो पूर्णतया औद्योगिक विकास का प्रतिफल है। इस प्रौद्योगिकी विकास की बदौलत ही आज हम जेनेटिकली

माडीफाइड खाद्यान्न पर निर्भर हो गये हैं। इसने मानव स्वास्थ्य को खराब कर दिया है व शारीरिक तथा मानसिक असुरक्षा तंत्र का विकास किया है। इस प्रौद्योगिक विकास ने रासायनिक स्राव के माध्यम से वातावरण को प्रदूषित किया है।

पांचवा कारण जनसंख्या तथा प्रौद्योगिकी विकास द्वारा प्रादुर्भूत प्रदूषण के स्रोतों के साथ पर्यावरण के संकट में मानवीय कारण को अनदेखा नहीं किया जा सकता। पर्यावरण की स्वच्छता के बारे में नगरवासियों तथा उद्योगपतियों की लापरवाही, सूचना का अभाव, स्थानीय अधिकारों की पर्यावरण की सुरक्षा के लिये प्रामाणिक मानदण्डों के प्रति लापरवाही, उपलब्ध जमीन पर निहित स्वार्थ समूहों का आधिपत्य और जनसुविधाओं जैसे कि शौचालय, गटर, कूड़ा–करकट इकट्ठा करने की पेटियां इत्यादि की पंगु स्थिति वातावरण में इतना प्रदूषण फैलाती हैं कि स्वच्छ पर्यावरण का अभाव हो जाता है तथा स्वस्थ रहन–सहन एक प्रकार से चुनौती बन जाता है।

पर्यावरणीय संकट के गहरे प्रभाव

इसका प्रभाव भी भयावह है। बढ़ती मानवीय आवश्यकताओं के कारण औद्योगीकरण, परिवहन, खनन (कोयला, कच्चा तेल) में वृद्धि तथा ईंधन हेतु लकड़ियों के प्रयोग ने वनों के विनाश को बढ़ाया है विश्व की करीब 2.5 अरब आबादी अभी भी आधुनिक ऊर्जा सेवाओं से वंचित है। दक्षिण और दक्षिण–पूर्व एशिया के लगभग 2 अरब लोग अब भी ईंधन के रुप में लकड़ी का उपयोग करते हैं जिससे वनों का विनाश बढ़ा है। संपूर्ण ऊर्जा उत्पादन और उपभोग में अब भी 20 फीसदी हिस्सा जीवाश्म ईंधन का ही है। जीवाश्म ईंधन के उपभोग की सालाना वृद्धि दर विकसित देशों में 1.5 और विकासशील देशों में 3.6 प्रतिशत रहेगी। यानी कुल 2 प्रतिशत वृद्धि मानी जाये तो 2055 में आज के मुकाबले तीन गुना जीवाश्म ईंधन की जरूरत होगी। यह एक बड़े खतरे का संकेत है। ऐसा वैश्विक स्तर पर कार्य करने वाली संस्थाओं का आंकलन है कि इस ईंधन से निकलने वाली कार्बन डाईआक्साइड में वृद्धि के कारण अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जायेंगी। पहाड़ों, ग्लेशियरों, अंटार्कटिक व ध्रुवों की बर्फ पिघलेगी जिससे समुद्र के जल स्तर में वृद्धि होगी, परिणामस्वरूप अनेक तटीय देश व द्वितीय देश जलमग्न हो जायेंगे। इन जीवाश्म ईंधनों के जलने से सल्फर डाईआक्साइ व नाइट्रोजन डाईआक्साइड गैस में भी वृद्धि होती है जो कि अम्लीय वर्षा का कारण होती है। इससे मृदा, वनस्पति, फसलें, इमारत, रेल–पटरियों, पुलों में क्षरण होता है। ताजमहल का क्षरण इसी की देन है। स्वीडन, नार्वे और अमेरिका इस अम्लीय वर्षा से सबसे ज्यादा प्रभावित हैं। अमेरिका के वर्जिनिया में हुई अम्लीय वर्षा ने तो वहां के सम्पूर्ण वन प्रदेश को ही नष्ट कर दिया है।

इसका दूसरा प्रभाव स्वास्थ्य संकट के रूप में देखने को मिलता है। क्योंकि पर्यावरण संकट, स्वस्थ जीवनशैली को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से किसी न किसी रूप में प्रभावित करता है। विविध परिवर्तनों के चलते हमें खाद्य सुरक्षा व बीमारियों के निराकरण हेतु जिन कीटनाशक जैविक रसायन व तकनीक को प्रयुक्त किया है उसने किसी न किसी रूप में संकट को बढ़ाया ही है। आज विकासशील देशों में एक करोड़ से ऊपर बच्चे हर साल पांच वर्ष की आयु पूरी करने के पहले ही मर जाते हैं जिसमें अधिकांश की मौत का कारण कुपोषण, सांस की समस्या, डायरिया तथा मलेरिया जैसी बीमारियां होती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार दुनिया भर में चालीस प्रतिशत बीमारियां पर्यावरण के नष्ट होने से होती है। पानी व हवा के प्रदूषण से उपजी बीमारियां हर साल विकासशील देशों के करीब साठ लाख लोगों को मार डालती हैं। आज मानसिक स्मृति का विलोपन, चिड़चिड़ापन, स्वस्थ चिंतन का अभाव, शरीर के संवदेनशील अंगों का कार्य बंद कर देना व कुंठित व्यक्तित्व के पीछे पर्यावरण संकट का प्रबल प्रभाव है। इससे जीव–जन्तुओं की संख्या में जहां कमी लक्षित होती है, उसके फलस्वरूप ध्रुवीय प्रदेशों में रहने वाली प्रजातियों के विनष्ट होने के रूप में सामने आता है।

पौध सहित कच्छ वनस्पतियां – इस प्रजाति के संरक्षण की व्यापक आवश्यकता है

इसका तीसरा प्रमुख प्रभाव जल संकट के रूप में सामने आता हैं। आज औद्योगिक प्रदूषण, खनिज तेल व कचरे के बहिःस्राव ने जल को सीधा प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक विकास ने प्राकृतिक संसाधन के रूप में जल की मात्रा को दिनों–दिन कम कर दिया है। आज पूरे विश्व की आबादी में करीब एक अरब लोगों को पानी नहीं मिलता है। विकासशील देशों में करीब 22 लाख लोग गंदे पानी से पैदा होने वाली बीमारियों के कारण मर जाते हैं। धरती के संपूर्ण जल में स्वच्छ

जल का प्रतिशत 0.3 से भी कम है। आने वाले अगले 20 वर्षों में क्रियाकलाप हेतु 57 फीसदी अतिरिक्त जल की आवश्यकता होगी। अतः इस बात की संभावना व्यक्त की जा रही है कि 2025 तक आते–आते एक तिहाई देशों में रहने वाली विश्व की दो–तिहाई आबादी पानी के गंभीर संकट से जूझती नजर आयेगी। इसके अतिरिक्त कृषि, मत्स्य संसाधन, व्यापार इत्यादि अनेक क्षेत्र पर्यावरण संकट की मार झेलते हैं।

कुछ स्वस्थ रणनीति

अतः जरूरत है इस पर्यावरण संकट को समाप्त करने की। ताकि भविष्य सुरक्षित हो सके व मानवीय अस्मिता दीर्घायमान हो सके। इस हेतु कुछ आम सहमतिजन्य दृष्टि है कि –प्रथम औद्योगीकृत कृषि को कम करना होगा क्योंकि यह तो सत्य है कि यह कम लागत में खाद्य उत्पादन को बढ़ाता है लेकिन लम्बे समय बाद पृथ्वी की क्षमता को कम करता है। इसके अंतर्गत व्यक्ति उच्च प्रौद्योगिकी के माध्यम से खतरनाक रसायनों को प्रयुक्त करता है जो स्वास्थ्य व पर्यावरण के लिये संकट उत्पन्न करता है। द्वितीय, बड़े बांधों के निर्माण को रोकना होगा। बांध पर्यावरण हेतु घोर संकट पैदा करते हैं क्योंकि यह कृषि योग्य भूमि, जंगल व देशज लोगों की सांस्कृतिक–आर्थिक परिस्थिति का विनाश करता है तथा इससे उत्पन्न असंतुलन एक भयावह संकट को जन्म देता है। तृतीय, जनसंख्या विस्थापन को भी रोकना होगा क्योंकि अपने परंपरात्मक गृह से विस्थापित लोग तकनीकी समस्यायें तो उत्पन्न करते हैं साथ ही विविध असामंजस्यपूर्ण कार्यों से पर्यावरण को क्षति पहुंचाते हैं। चौथा, कर्ज और संरचनात्मक सामंजस्य की व्याप्त समस्या का निदान ढूंढना होगा ताकि प्राकृतिक संसाधनों के बढ़ते वन के कटाव को रोका जा सके। पांचवां, विषैले पदार्थों व रेडियोधर्मी कचरे के बढ़ते बाजार को रोकना होगा क्योंकि ये पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं। छठां, राष्ट्र की सुरक्षा हेतु सेना, पर्यावरण नियामकों की अवहेलना करती है व अपने क्रियाकलापों के दौरान ईंधन, कचरा, अखण्डित गोला–बारूद व खतरनाक हथियार फेंकती हैं जो पूर्णरूप से पर्यावरण का क्षय करता है। हालांकि यह कार्य पूर्णतया विकसित देश की रक्षाप्रणाली करती है। इस पर नियंत्रण अत्यावश्यक है। सातवां, परमाणु परीक्षण वैश्विक पर्यावरण को काफी क्षति पहुंचाते हैं, परमाणु हथियार विविध किरणें मुक्त करती हैं, जो कि कैंसर, ट्यूमर, प्रजनन निष्फलता, गर्भपात, जन्म दुर्गुणता व अन्य विविध मानवीय व पर्यावरणीय समस्यायों का कारण होती हैं। जैली–फिश बेबीज घटना इस परमाणविक किरणों की ही देन है जो पर्यावरण में व्याप्त होती है व लम्बे समय तक मानवीय पर्यावरण को प्रदूषित करती है। अतः जरूरत परमाणविक साम्राज्यवाद को समाप्त करने की है। आठवां, झूम कृषि पर नियंत्रण स्थापित करना होगा व वनों के काटने वालों को कठोर दण्ड तथा वृक्षारोपण के कार्यक्रम को अनवरत जारी रखना होगा। नौवां, निर्धनता व बेरोजगारी के विरुद्ध बढ़ते दुश्चक्र को कम करना होगा। दसवां, बढ़ते नगरीकरण को रोकना होगा ताकि स्वस्थ संतुलन स्थापित किया जा सके। ग्यारहवां, उस स्तर की प्रौद्योगिकी उच्चता हासिल करनी होगी जो पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखती हो लेकिन इसमें सबसे प्रमुख भूमिका सूचना व संप्रेषण प्रौद्योगिकी की हो सकती है।

सूचना और संप्रेषण प्रौद्योगिकी पर्यावरणीय संकट हेतु प्रबंधन का कार्य कर सकती है। सूचना तंत्र व सेंसर नेटवर्क द्वारा यह आपातकालीन पर्यावरण संकट–चाहे यह प्राकृतिक हो या मानव निर्मित, का निदान चेतावनी जागरुकता तथा दूरसंचार का तीव्र प्रयोग करके सूचना को सही ढंग से प्रसारित कर सकता है। यह सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र अकादमिक जगत के मध्य पर्यावरण संकट और उत्पन्न चुनौतियों पर एक गठबंधन आयोजित कर सकता है जो पर्यावरण से संबंधित सतत व स्वस्थ रणनीति, कार्य योजना, समाज के संरक्षण और सुरक्षा में योगदान दे सकता है। यह वर्तमान व भविष्य के अर्थतंत्र का एक महत्वपूर्ण केन्द्रीय आधार है जो सतत् विकास हेतु अत्यावश्यक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रतिमानों को पुनः संशोधित व पुनः निर्मित कर सकता है। यह ऊर्जा क्षमता के बचाव हेतु पावर का निर्माण व वितरण या इंटिलिजेंट तंत्र का निर्माण ही नहीं करता है बल्कि यह उपभोक्ता के जटिल व्यवहार प्रतिमान व विसंगितियों को दूर करता है। यह स्मार्ट, नेटवर्क उपभोक्ताओं की श्रृंखला तैयार करता है जो अपनी ऊर्जा की खपत कमी को आई सी टी के माध्यम से प्रकाशित व नियंत्रित करता है। यह अतिशय ऊर्जा का प्रयोग करने वाले लोगों को प्रभावी तरीके से ऊर्जा संरक्षित करने के लिये सशक्त करता है। इससे जटिल पावर तंत्र पर नियंत्रण स्थापित होता है और एक नये समाज के निर्माण में भागीदारी होती है। अद्यतन 70 राष्ट्रों की सहभागिता के रूप में अन्तर्सरकारों का जी.ई.ओ.एस.एस. (ग्लोबल अर्थ आब्जर्वेशन सिस्टम आफ सिस्टम्स) इसका प्रमुख उदाहरण है।

बहरहाल अंततः कह सकते हैं कि भविष्य में हम एशियाई धुंध के नीचे रहें, गैस चैम्बरों के सदस्य बनें या पर्यावरण से सुरक्षा हेतु एक विशेष प्रकार के वैज्ञानिक कोट को पहनें या डाक्टरों की सलाह पर रंग–बिरंगी गोलियों का सेवन प्रतिदिन करें। इससे अच्छा है कि हम अभी भी आत्मिक रूप से सचेत हो जायें अन्यथा चिंतन–मंथन और विश्व स्तर पर राजनीतिक संवाद का कोई फायदा नहीं होगा जो हमेशा से प्रेरित होता है और शायद जलवायु पर कार्यरत संस्था को वर्ष 2007 का नोबल पुरस्कार देना इसी मांग की शुरूआत है।

(लेखक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग में रिसर्च एसोसिएट हैं)
ई–मेल : mkrbhn@rediffmail.com

मानव विकास की कीमत देता पर्यावरण

राहुल धर द्विवेदी

दिनों–दिन मानव की ज्यादा बलवती होती विकास की चाह, अंतरिक्ष तक पहुंचते आदमी के कदम, रोज़ाना ही नये–नये आविष्कारों की भरमार। यह सब सुनने में कितना अच्छा लगता है, कितना सुखद। पर क्या हमने कभी यह भी जानने की कोशिश की है कि, चारों तरफ होती यह प्रगति किस कीमत पर हो रही है? लगभग चालीस लाख साल पहले आदमी की उत्पत्ति धरती पर हुई। इसके बाद से ही मानव जाति की नयी–नयी आवश्यकताओं तथा सुख–सुविधा के लिए धरती, प्रकृति और पर्यावरण हर जगह पर मनुष्यों की निर्भरता बढ़ती ही गई। जनसंख्या में होती निरंतर वृद्धि इस निर्भरता तथा संसाधनों के असीमित दोहन को बढ़ाने में और मददगार बनीं। आज प्रदूषण के बढ़ते प्रभावों का ही परिणाम है कि समुद्र का जलस्तर लगातार बढ़ रहा है। जैव विविधता में हो रही कमी क्या कहती है? मानसून की अनिश्चितता तथा तापमान में वृद्धि का क्या इशारा है? ये साधारण सवाल नहीं है। आज ये अनिवार्य हो गया है कि हम अपने पर्यावरण की रक्षा, उसकी स्वच्छता पर ध्यान दें तथा इस दिशा में सकारात्मक कदम उठायें।

जलवायु परिवर्तन पर अभी हाल ही में आई संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट में विश्व के सभी देशों से इस बारे में ध्यान देने की अपील की गई है। करीब दो दशक पहले से ही वैज्ञानिक हमें पर्यावरण के बारे में मसलन ग्लोबल वार्मिंग और ओजोन परत के क्षरण आदि खतरों से आगाह करते रहे हैं। कई वैश्विक नीतियों के बावजूद हम आज भी इस पर कोई संतोषजनक अंकुश लगा पाने में सफल नहीं हो सके हैं। ये खतरे हर देश, हर व्यक्ति, हर प्राणी सभी के सामने हैं। अतः जरूरत है कि हम पर्यावरण के प्रति जागरुक रहें तथा ईमानदारी से इसके संरक्षण के लिए कदम उठायें। अमेरिका जैसे विकसित देश एक तरफ तो पर्यावरणीय जागरुकता के अतीत में मील का पत्थर कहे जाने वाले 'क्योटो समझौते' से स्वयं को अलग रखते हैं तो दूसरी ओर अपने देश के उद्योगों से खतरनाक रसायनों के प्रयोग न करने की अपील करते हैं। 'क्योटो संधि' को 178 देशों ने अपनी स्वीकृति दी थी। संधि में यह प्रस्ताव था कि सभी राष्ट्र अपने द्वारा उत्सर्जित की जा रही खतरनाक गैसों के स्तर को 1990 के स्तर से कम से कम पांच फीसदी कम करेंगे। यह कार्य वर्ष 2008–12 के दौरान होना था। यदि हमने इस संधि के प्रति पूरी ईमानदारी व सजगता दिखाई होती तो आज पर्यावरण संकट इतना भयावह नहीं होता।

पर्यावरण संबंधी संयुक्त राष्ट्र की समिति इंटरगवर्नमेंट चैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आईपीसीसी) ने सख्त चेतावनी दी है कि इस शताब्दी के अंत तक भारत जैसे कई देशों को सूखे, बाढ़, तूफान जैसी कई आपदाओं का सामना करना पड़ सकता है। इसी साल के मध्य में अभी इस रिपोर्ट के मुताबिक आने वाले कुछ दशकों में समुद्र के जलस्तर में 89 सेंटीमीटर की बढ़ोतरी होगी। इस कारण इंडोनेशिया को लगभग दो हजार द्वीपों से हाथ धोना पड़ेगा। फिजी जैसे देशों के जलमग्न होने की भी बात चेतावनी में कही गयी है। इस रिपोर्ट ने कहा है कि यदि हमने पर्यावरण के लिए प्रतिकूल गतिविधियां कम नहीं की तो स्थिति काफी भयावह होगी। पिछले पचास वर्षों में अंटार्कटिका में पेंग्विनों की संख्या आधी रह गई है। ग्लेशियरों की मोटाई पिछले 30–40 सालों में चालीस प्रतिशत कम हो गई है। विश्व मौसम संगठन के अनुसार भी हमारी धरती का औसत तापमान 0.6 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ गया है। भूजल स्तर में गिरावट, कई बीमारियां, सुनामी आदि जैसी समस्याएं दिनों दिन दस्तक दे रही हैं। दिन प्रतिदिन नये अनुसंधान व अध्ययन हमें यही बताते हैं कि हमें अब अनिवार्य रूप से इस समस्या की तरफ ध्यान देना होगा।

चितकबरा हिरण – सामान्य नाम चीतल का संरक्षण जरूरी

वैश्विक रूप से हो रहे

लगातार उत्खननों के कारण धरती लगातार खोखली होती जा रही है। 19वीं शताब्दी की समाप्ति तथा 20वीं सदी की शुरुआत से ही बहुमूल्य खनिजों ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। इनमें मुख्य रूप से पेट्रोलियम पदार्थ, प्राकृतिक गैसें, तांबा, एल्युमीनियम आदि तत्व प्रमुख थे। आज पेट्रोलियम पदार्थों ने तो हमारे जीवन में गहरी पैठ बना ली है। ऊर्जा की जरूरत को पूर्ण करते इन तत्वों की पूर्ति हमें पृथ्वी से होती है। इनको उपयोग में लाने के लिए कई रासायनिक क्रियाएं की जाती हैं। इसी प्रकार गाड़ियों के द्वारा होने वाले प्रदूषण, कारखानों की धुंआ उगलती चिमनियां, उद्योगों से निकलता खतरनाक रसायनों से भरा जल सभी कुछ प्रदूषण को बढ़ाने में सहायक है। बढ़ते हुए प्रदूषण के कारण तथा पेड़ों की अंधाधुंध कटाई से वैश्विक तापमान में वृद्धि हुई। इसके चलते ग्लेशियर पिघलते हैं जिससे समुद्र का जलस्तर खतरनाक ढ़ंग से बढ़ रहा है। अभी हाल ही की बात है जब अंटार्कटिका में एक बहुत बड़ा हिमखंड मात्र 35 दिनों में ही टूटकर समुद्र में समाहित हो गया। समुद्री जलस्तर में वृद्धि के कारण अनिश्चित व ज्यादा वर्षा तो होती है इसका सबसे बड़ा खतरा दुनिया भर के तटीय शहरों को भी होता है। सऊदी अरब में हुई बेमौसम बरसात व बर्फबारी पर्यावरण के गिरते स्वास्थ्य की तरफ इशारा करते हैं। संयुक्त राष्ट्र ने पहले से ही हमारे देश भारत की पहचान उन सत्ताईस देशों में की है जिनको समुद्र के बढ़ते जल स्तर से सबसे ज्यादा खतरा है। जैव–विविधता के मुद्दे पर विश्व में छठा स्थान रखने वाले देश भारत के लिए यह और भी ज्यादा शोचनीय है।

आस्थामुडी झील, केरल का दृश्य

आज जबकि पूरे विश्व में यह संकट है तो यह जरूरी हो गया है कि हम इस दिशा में कदम उठायें। पर्यावरण के बारे में वैश्विक रूप से प्रयास हुए। इनमें 'क्योटो संधि' तथा रियो व जोहान्सबर्ग में सेमीनारों का आयोजन किया गया। कार्बन डाई आक्साइड के उत्सर्जन में अमेरिका को जल्द ही पीछे छोड़ देने वाले देश चीन ने मार्च माह से (पिछले वर्ष) 'स्वच्छता विकास प्रणाली कोष' शुरू करने का फैसला किया। इस कोष के लिए चौसठ लाख अमेरिकी डालर का कर्ज विश्व बैंक ने भी दिया है। विश्व बैंक यूरोप को भी ऐसा ही कर्ज देगा। संयुक्त राष्ट्र महासचिव बान की मून नवंबर 2007 में लातिन अमेरिका तथा यूरोप के दौरे पर अंटार्कटिका व अमेजन के वर्षा वनों का भी जायजा लेंगे। इस दौरान वे मानवों से पर्यावरण को हो रहे नुकसान का भी अंदाजा लेंगे। दरअसल बान ने जलवायु परिवर्तन व आ रहे बदलाव के प्रति लड़ाई को अपनी प्राथमिकताओं में लिया है। इसी विषय पर भारत सरकार ने भी समझदारी से तथा ईमानदारी से ध्यान दिया है। भारत ने वर्ष 2002 में ही 'क्योटो समझौते' को अपनाया। सरकार का पर्यावरण एवं वन मंत्रालय देश में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू एन ई पी), अंतर्राष्ट्रीय समन्वित पर्वत विकास केन्द्र, दक्षिण एशिया सहकारी पर्यावरण कार्यक्रम के लिए केन्द्रीय एजेंसी के रूप में नामित किया गया है। कई प्रजातियां मसलन एपोसाइनेर्स वर्ग जो कि महाराष्ट्र से 50 वर्ष बाद तथा एरीकेसी वर्ग के पौधे सिक्किम से 30 वर्ष बाद संग्रहीत किए गए। भारत का कुल वन क्षेत्र जो कि 6,74,333 वर्ग किमी. का है। यह कुल भौगोलिक क्षेत्र का 20.64 प्रतिशत है। सरकारी प्रयासों से इसमें 2765 वर्ग कि.मी. वन क्षेत्र की वृद्धि वर्ष 2001 की तुलना में हुई। भारत ने अपनी वन नीति की घोषणा 1894 से ही कर दी थी। दसवीं पंचवर्षीय योजना में एक नई योजना जिसे 'समन्वित वन सुरक्षा योजना' कहते हैं भी लागू की गई है। वन्य जीव संरक्षण के लिए नई कार्ययोजना (2002–16) लायी गई है। भारत में संरक्षित क्षेत्र में इस समय 94 राष्ट्रीय उद्यान व 501 अभयारण्य हैं। वन्य जीव संरक्षण के तहत प्रोजेक्ट टाइगर (1973) व हाथी परियोजना (1992) से चल रही हैं। स्वयं सेवी संस्थाओं को भी 'ग्रीनिंग इंडिया के लिए अनुदान सहायता दी जाती है।

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड जो कि 1974 में स्थापित किया गया। यह निश्चित, सकारात्मक नीति के तहत कार्य करता है तथा प्रदूषण व संबंधित मसलों पर केन्द्र सरकार को सलाह देता है। इस संस्था ने उन 72 प्रदूषित नगरों की सूची बनायी है जो कि राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता मानदंडों का उल्लंघन कर रहे हैं। राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता निगरानी कार्यक्रम (एन.ए.एम.पी.) के अंतर्गत 4 वायु प्रदूषकों में, सल्फर डाईआक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड, स्थगित विविक्त पदार्थ तथा अंतःश्वसनीय स्थगित विविक्त पदार्थों की निगरानी की योजना है। इसके अतिरिक्त देश के समस्त

स्थानों पर नए वाहनों के लिए भारत–II मानक अप्रैल, 2005 से लागू है। जल संरक्षण की यदि बात करें तो अनेक योजनाओं के तहत देश की 34 नदियों के पानी की गुणवत्ता में सुधार लाने के प्रयास किए जा रहे हैं। उपरोक्त योजनाओं का क्या हमें अपेक्षित लाभ मिल रहा है? यह बात काफी जरूरी है। दिल्ली में यमुना, लखनऊ में गोमती नदी के प्रदूषण के बारे में आए दिन हम कुछ न कुछ समाचारपत्रों में देखते हैं। यदि गंगा को ही लें तो ऋषिकेश से इलाहाबाद तक अपनी यात्रा में ही इसमें 132 गंदे नाले आकर गिरते हैं। अगर ऐसे ही चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब हमें बच्चों की कविता 'मछली जल की रानी है' पर सुधार करने की जरूरत पड़ेगी। गंदे जल के कारण जलचरों की मौतों पर हम सभी बातें करते हैं पर यहां जरूरत सही ढ़ंग से कुछ सार्थक करने की भी है, सिर्फ सोचने की ही नहीं। हालांकि सरकार कई योजनाएं जैसे कश्मीर में डल झील तथा अन्य पैंतीस झीलों के लिए योजनाएं भी चला रही है।

देश की 1580 औद्योगिक इकाइयां खतरनाक रसायनों से होने वाली दुर्घटना की आशंका वाली हैं। इससे निबटने के लिए अब तक 1107 स्थलीय तथा 138 गैर स्थलीय योजनाएं तैयार की जा चुकी हैं। इन खतरनाक रसायनों को प्रयोग में लाने वाली इन औद्योगिक इकाइयों को अनिवार्य रूप से बीमा पालिसी लेनी होती है।

भारत सरकार ने राष्ट्रीय वनारोपण कार्यक्रम, पारिस्थितिकी विकास बल तथा संयुक्त वन प्रबंधन प्रकोष्ठ (जे एफ एम) की स्थापना की है। यह सभी वन संवर्धन, कठिन परिस्थितियों में कार्य करने तथा वन सुरक्षा के लिए कार्य करते हैं। पर्यावरण संबंधी सूचनाओं के लिए भारत ने पर्यावरण सूचना प्रणाली भी तैयार की है। ओजोन परत के संरक्षण व बचाव के लिए भारत ने 'मांट्रियल संधि' प्रस्ताव को लागू करने के लिए आवश्यक कदम उठाये हैं। भारत 1992 में इसमें शामिल हुआ। सरकार ओजोन परत को नष्ट होने से बचाने के लिए प्रयासरत है। सरकार ओजोन परत के लिए खतरनाक पदार्थों को नष्ट करने वाली परियोजनाओं के लिए कस्टम शुल्क/उत्पादन शुल्क की छूट देती है। इसके अतिरिक्त भारत पर्यावरण परिवर्तन के बारे में संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन का सदस्य भी है। हमारी सरकार इस बात पर भी जोर दे रही है कि लोगों को पर्यावरण के बारे में जागरुक बनाया जाये। इसके लिए सरकार द्वारा पर्यावरण–शिक्षा, जागरुकता और प्रशिक्षण के लिए योजना भी चलायी गई है। इस संबंध में अहमदाबाद, चेन्नई, बंगलौर समेत कुल नौ जगहों पर अत्यंत विकसित केन्द्रों की स्थापना की गई है।

पर्यावरण हमारे सामने एक ज्वलंत समस्या बन गई है। यह सम्पूर्ण विश्व के लिए एक समान रूप से खतरनाक होती जा रही है। अमेरिका जैसे विकसित उपभोक्तावादी देश जो इसके लिए काफी ज्यादा जिम्मेदार हैं, उनकी इस बात को भूल कहें या गलती? अफगानिस्तान, ईराक जैसे देशों में विस्फोट व बमों का रोज फटना क्या पर्यावरण के लिए हानिकारक नहीं? और सबसे बड़ा सवाल यह है कि हम मानवों के विकास की कीमत बेजुबान प्राणी तथा हरीभरी वनस्पतियां अपनी जान देकर क्यों दें? क्या यह सही होगा? नहीं, बिल्कुल नहीं। अतः जरूरत है कि हम सभी इस बारे में कुछ ठोस कदम उठायें। कुछ सार्थक व सकारात्मक करें जो कि पर्यावरण के संरक्षण, पोषण व संवर्धन में सहायक हो। पर्यावरण ऐसी सह समस्या है जो कि सब पर प्रभाव डालेगी। कोई भी देश या व्यक्ति इसके दुष्प्रभावों से अछूता नहीं रह सकता। यह एक ऐसी परेशानी है जो देश की सीमाओं को नहीं मानती है। अतः हम सबको मिलकर इस खतरे से निपटने के लिए साझें प्रयासों की जरूरत होगी ताकि हम अपनी अगली पीढ़ियों को विरासत में एक साफ, स्वच्छ पर्यावरण दे सकें।

(लेखक पर्यावरण विषय के विशेषज्ञ तथा स्वतंत्र पत्रकार है)
ई–मेल : rahuldhar dhivedi@Gmail.com

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो और उसके साथ ई–मेल तथा मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। कुरुक्षेत्र में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख संपादक, कुरुक्षेत्र कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग, गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

पर्यावरण संरक्षण आज की जरूरत

डॉ. एल.के. इदनानी

आज हम आधुनिक कृषि व्यवस्था में जिन तरीकों को अपना रहे हैं वे टिकाऊ नहीं है, जैसे कि अंधाधुन्ध रासायनिक उर्वरकों का उपयोग, कीटनाशकों का उपयोग, जरूरत से ज्यादा मशीनीकरण, बाह्य जननद्रव्यों का उपयोग इत्यादि। वास्तव में ये सारे कारक जहां हरित क्रांति लाने के लिये जिम्मेदार हैं वहीं ये पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव डाल रहे हैं। इन सबके अलावा मृदा अपक्षरण, बड़े पैमाने पर वनों की कटाई और घटते जल स्तर ने हमारी समस्या को और भी जटिल बना दिया है। जरूरत से ज्यादा संश्लेषित कीटनाशक और रासायनिक खाद के इस्तेमाल से अधिकांश खेतों की उर्वरा शक्ति काफी कम हो गई है। आज हमें आधुनिक और तकनीकी विकास के उन तरीकों की आवश्यकता है, जिससे हमें दीर्घकालिक टिकाऊ कृषि उत्पादन प्राप्त कर सकें व पर्यावरण को बचा सके।

भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 328.73 मिलियन हेक्टेयर है जिसमें से कुल खेत योग्य क्षेत्रफल 143 मिलियन हेक्टेयर है।

मृदा क्षरण भारत में एक प्रमुख समस्या है जिससे 130.5 मिलियन हेक्टेयर में ऊपरी सतह भूमि का क्षरण होता है। अनुमान है कि लगभग 5000 मिलियन टन मृदा (16.4 टन प्रति हेक्टेयर) का क्षरण प्रति वर्ष हमारे देश में हो जाता है जिसमें लगभग 29 प्रतिशत मृदा बहकर समुद्र में स्थाई रूप से चली जाती है। इसी कारण जलाशयों की भण्डारण क्षमता भी 1–2 प्रतिशत प्रतिवर्ष घटती जा रही है। इसी प्रकार मृदा क्षरण मरुस्थलों तथा शुष्क क्षेत्रों में अधिक होता है। इससे प्रभावित क्षेत्र राजस्थान, हरियाणा, गुजरात और पंजाब मुख्य हैं। हवा द्वारा क्षरण समुद्री किनारों के आसपास जहां रेतीली भूमि पाई जाती है वहां पर भी होता है।

भारत की मृदायें साधारणतः कम उपजाऊ होती हैं। प्रायः इनमें जीवांश तत्व की कमी है। मृदा कम उपजाऊ होने के कारण कई वर्षों तक लगातार खेती करने से उनके पोषक तत्वों

वन संरक्षण आज की आवश्यकता

के भण्डार में काफी कमी आयी है।

वन संरक्षण

वर्तमान में हमारे देश में वनों का क्षेत्रफल 68.8 मिलियन हेक्टेयर है जो कि कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का मात्र 20.9 प्रतिशत ही है जबकि पर्यावरण का सही संतुलन रखने के लिये यह क्षेत्रफल 33 प्रतिशत होना चाहिए। अन्य आंकड़ों के अनुसार हमारे देश में वनों का क्षेत्रफल प्रति व्यक्ति 0.07 हेक्टेयर के आसपास है जबकि समूचे विश्व की औसत दर 1.9 हेक्टेयर है। इसका मुख्य कारण रहा है कि सन् 1975 से सन् 1982 के मध्य लगभग 2.5 हेक्टेयर वनों का ह्रास प्रति मिनट हुआ है। विश्व में वनों का ह्रास एक हेक्टेयर प्रति सेकण्ड हुआ है अर्थात् पिछले 200 वर्षों में 60 लाख वर्ग कि.मी. क्षेत्र में वनों का हनन हुआ है।

पर्यावरण संरक्षण के लिए सही जल प्रबंधन की जरूरत

अनुमान है कि इस शताब्दी के अन्त तक देश में ईंधन लकड़ी की आवश्यकता 340 मिलियन टन प्रति वर्ष होगी तथा इमारती लकड़ी की आवश्यकता 60 मिलियन घन मीटर प्रति वर्ष होगी। वर्तमान में ईंधन लकड़ी का उत्पादन केवल 200 मिलियन टन ही है। उष्ण कटिबंध क्षेत्रों के एक हेक्टेयर वन से पर्यावरण की दृष्टि से एक करोड़ 41 लाख रुपये का लाभ मिलता है। लगभग 50 वर्षों में एक वृक्ष 15 लाख रुपये मूल्य का लाभ देता है। इसमें कई कारक शामिल हैं। वनों का विस्तार तथा उनका संरक्षण केवल कार्बन डाइआक्साइड वायुमंडल से लेने के लिए ही नहीं किया जाता बल्कि जैविक संतुलन को बनाये रखने के लिये भी आवश्यक है।

यदि खेत विशेष की मिट्टी की जांच के फलस्वरूप प्राप्त मृदा उर्वरकता संबंधी जानकारी को ध्यान में रखते हुए पूर्व निर्धारित उपज–लक्ष्य की प्राप्ति हेतु फसल की खुराक पूरी की जाये तो इससे न केवल गुणवत्तायुक्त अधिकतम उपज प्राप्त होती है बल्कि किसान भाइयों को अधिकतम लाभ भी प्राप्त होता है। जब मिट्टी की जांच के फलस्वरूप पोषक तत्वों की कमी का अनुमान लग जाये तब जिन भी तत्वों की मिट्टी में कमी हो उन सभी तत्वों जिनमें प्रमुख तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम) के साथ गौण (उदाहरण के लिए गंधक, मैग्नीशियम आदि) और सूक्ष्म पोषक तत्वों (जैसे जिंक, बोरॉन आदि) की यथोचित पूर्ति उर्वरक और खाद के माध्यम से अवश्य की जानी चाहिए।

जल संरक्षण

हमारे देश में प्रतिवर्ष औसतन 1250 मि.मी. वर्षा होती है जो करीब 400 मिलियन हेक्टेयर मीटर के बराबर है। इस कुल पानी

शहरों में प्रदूषण स्तर

वर्ष 2005 के पर्यावरण निरंतरता सूचकांक (ईएसआई) के अनुसार 146 देशों में भारत 101वें स्थान पर है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता निगरानी कार्यक्रम (एनएएमपी) नाम से एक राष्ट्रव्यापी परिवेशी वायु गुणवत्ता निगरानी कार्यक्रम चल रहा है। परिवेशी वायु गुणवत्ता निगरानी के आधार पर देश के 51 शहरों में राष्ट्रीय परिवेशी वायु नियंत्रण मानकों (एनएएक्यूएस) के अंतर्गत निर्धारित श्वसनीय कण पदार्थ (आरएएपीएम) स्तर बनाए नहीं रखा गया है।

देश में प्रदूषण नियंत्रण के लिए उठाए गए कदम इस प्रकार हैं –

1. देश भर में नए और पुराने वाहनों से होने वाले प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए वाहन ईंधन नीति पर विशेषज्ञ समिति ने 2010 तक का एक कार्यक्रम तैयार किया है।
2. पूरे देश में यूरो – II उत्सर्जन नियम और 11 बड़े शहरों के लिए यूरो – III नियम लागू करना।
3. यूरो – II और यूरो– III अनुपालक ईंधन पूरे देश और 11 बड़े शहरों के लिए लागू करना। इसमें डीजल और पेट्रोल से सल्फर और बेंजीन की मात्रा में कटौती शामिल है।
4. कुछ प्रदूषित शहरों में संकुचित प्राकृतिक गैस (सीएनजी) और तरल पेट्रोलियम गैस (एलपीजी) जैसे साफ ईंधन का प्रयोग।
5. उन्नत प्रदूषण नियंत्रणाधीन (पीयूसी) प्रमाणीकरण प्रणाली लागू करना।
6. चुनिंदा शहरों में सार्वजनिक परिवहन प्रणाली लागू करना।
7. नदियों के पानी की गुणवत्ता बहाल करने के लिए राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना तैयार और क्रियान्वित की जा चुकी है।
8. सामान्य और स्रोत आधारित पर्यावरण मानकों को अधिसूचित करना।
9. अत्यधिक प्रदूषित क्षेत्रों में पर्यावरण की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए पर्यावरण प्रबंधन योजना तैयार करना और
10. पर्यावरणीय अनुपालन पर नियमित निगरानी। (पसूका)

में से 165 मिलियन हेक्टेयर मीटर पानी का भूमि में नमी के रूप में संग्रह होता है, 187 मिलियन हेक्टेयर मीटर पानी नदियों में बह जाता है और 43 मिलियन हेक्टेयर मीटर भूजल के रूप में जमीन में रहता है। इस वर्षा के पानी का अगर सही तरीके से इस्तेमाल किया जाये तो बारानी परिस्थितियों में कृषि उत्पादन 50–100 प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है। भू जल में से सिंचाई के लिये 46.5 मिलियन हेक्टेयर मीटर पानी ही काम में लिया जाता है जो हमारे देश की कुल क्षमता का 40 प्रतिशत है। इसके लिए आवश्यक है वर्षा के पानी को भूमि में संचित करना व भूमि पर बहने वाले पानी को सही तरीके से काम में लेना।

वर्षा के पानी को पत्थर की दीवार, चक डेम, जल ग्रहण तालाब इत्यादि बनाकर संग्रह किया जा सकता है। इनसे भू जल स्तर में वृद्धि होगी व सिंचाई के लिए भी इस पानी को काम में लिया जा सकता है। हमारे देश में कुल वर्षा का 187 मिलियन हेक्टेयर मीटर पानी बहता है उसमें से 18 मिलियन हेक्टेयर मीटर ही जल तालाबों में इकट्ठा किया जाता है। देश में चल रही योजनाओं के पूर्ण हो जाने पर भी मात्र 38 मिलियन हेक्टेयर मीटर पानी को ही संग्रहण किया जा सकेगा जो कि बहकर जाने वाले पानी की तुलना में बहुत ही कम है। यह हो जाने के बाद भी हमारे देश में करीब 10 से 20 हेक्टेयर भूमि पर 0.5 हेक्टेयर के छोटे–छोटे तालाब (फार्म पोण्ड) बनाये जायें। इसी तरह इमारतों की छत के पानी को गढ्ढों में इकट्ठा करके डाला जा सकता है। फिर भी सबसे ज्यादा पानी जो सिंचाई के लिए उपलब्ध हो सकता है उसके लिए हमारे देश में उपलब्ध नदियों को जोड़ना होगा।

प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्ध

कृषि और पर्यावरण एक दूसरे के पूरक हैं। 25 वर्षों में कृषि में जो उन्नत तकनीकी का प्रयोग किया उससे संसाधन और पर्यावरण को गैर जिम्मेदाराना ढंग से अंधाधुंध उपयोग के नतीजे साफ नजर आने लगे हैं। जैसे वर्षा के पानी का इकट्ठा न होने से पीने के पानी के स्रोत का सूखते जाना, वन वनस्पति और प्राणी सम्पदा का विलोप, सूखा और बाढ़ की समस्या में तेजी आना और चरागाहों का घटते जाना तथा भूमि की उपजाऊ मिट्टी का बिगड़ना, हवा और पानी की गुणवत्ता में गिरावट मुख्य है।

विश्व पर्यावरण और विकास आयोग तथा उसकी खाद्य वानिकी और पर्यावरण सलाहकार समिति की रिपोर्ट में इस बात पर बल दिया गया है कि आर्थिक विकास और नई तकनीकी को पर्यावरण समस्याओं के साथ जोड़ना होगा। इसलिए पर्यावरण की सुरक्षा और टिकाऊ खेती के लिए ऐसी कृषि प्रणालियों के विकास पर बल दिया जाना चाहिए ताकि हवा, पानी और मिट्टी को बिगाड़े बिना खेती की उत्पादकता को बनाये रख सके।

कृषि के अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहां भूमि की उत्पादकता कोई दीर्घकालीन हानि पहुंचाये बगैर फसलों, पशुओं, मछलियों और वन वृक्षों की उत्पादकता लगातार बढ़ाई जा सकती है। लेकिन इसके लिए हमें मिट्टी के स्वास्थ्य की बराबर देखभाल करनी होगी और जल प्रबंध की बेहतर तकनीकी अपनानी होंगी।

भूमि के कटाव को रोकने व उर्वराशक्ति को संतुलित रखने के लिए ऐसी फसलों और फसल चक्रों को अपनाना चाहिये जिसमें ज्यादा समय तक भूमि में कोई न कोई फसल खड़ी रहे तथा भूमि को अच्छी तरह बांधकर रखती हो जैसे रिजका, बरसीम, लोबिया इत्यादि।

फसल चक्र में दलहनी फसलों को सम्मिलित करना भी आवश्यक है क्योंकि दलहनें पलवार का कार्य करती हैं व मृदा क्षरण कम कराने में सक्षम हैं तथा वायुमंडल में से नाइट्रोजन लेकर भूमि में स्थिरीकरण करती है।

पट्टीदार खेती

इसमें फसलों को अधिकतर कतारों में बोया जाता है। जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, कपास आदि। इस तरह कटाव को रोकने वाली फसलें जो कि घनी बोई जाती है, जैसे बरसीम, मूंग, सोयाबीन आदि को समोच्च रेखाओं पट्टियों में क्रमानुसार एक के बाद एक बोया जाता है। इस विधि से जल प्रवाह कम होता है व कटी हुई मिट्टी रोधी फसलों की पट्टियों में इकट्ठी हो जाती है। इस तरह इस विधि से भूमि और जल दोनों को क्षरण से बचाया जा सकता है।

पौधों के अवशेष जैसे पत्तियों, पुआल, कूड़ा–करकट आदि का प्रयोग मिट्टी ढकने के लिए किया जाता है। इससे भूमि वर्षा की बूंदों के सीधे प्रहार व तेज हवा के कटाव से बचती है। यह भूमि के सतह से वाष्पीकरण को कम करती है जिससे भूमि में नमी बनी रहती है। फसल ठूंठ काट दिया जाता हैं तथा ठूंठ खेत में ही छोड़ दिये जाते हैं जो मिट्टी को बांधे रखते हैं तथा हवा के वेग को कम कर मिट्टी को उड़ने से बचाते हैं। यदि भूमि का ढाल बहुत कम हो तो भूमि को कटाव से रोकने के लिए भूमि की जुताई ढाल के विपरीत दिशा में करनी चाहिए। इसमें कूड़ जो बनेंगे वे मिट्टी का कटाव रोकेंगे। इससे वर्षा के पानी का भी भूमि में संचय होगा।

कृषि वानिकी

हाल के वर्षों में वनों की निरन्तर कटाई से पर्यावरण को काफी नुकसान हुआ है जिनमें भू रक्षण, तापमान में निरन्तर बढ़ोतरी, मानसून की असामान्यता, वन प्रजातियों का लुप्त होना व पारिस्थितिकी संतुलन का बिगड़ना मुख्य हैं। पर्यावरण के इस ह्रास को रोकने के लिए कृषि वानिकी एक कारगर साधन हैं। यह एक श्रम प्रधान कार्य है जिससे ग्रामीणों को एक ओर जहां रोजगार मिलता है वहीं आर्थिक रूप से वन उपज, पंचायतों, भवनों, सहकारी संस्थाओं आदि के आसपास वृक्षारोपण सामूहिक आधार पर किया जाता है। इससे पर्यावरण सुधार के साथ–साथ भरपूर चारा तथा जलाऊ लकड़ी प्राप्त होती है। सामाजिक वानिकी का कार्यक्रम सहकारिता के आधार पर गांव में स्वयंसेवी संस्था बनाकर करना चाहिए, ताकि पौधों की देखभाल उचित ढंग से हो सके।

(लेखक भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (पूसा) नई दिल्ली में वरिष्ठ वैज्ञानिक हैं)
ई–मेल : lkidnani@yahoo.com

INDIRA
भारत की प्रधान मंत्री जो आज भी सबके दिलों में जीवित है।
इंदिरा प्रियदर्शिनी गांधी (19 नवम्बर, 1917 - 31 अक्तूबर, 1984)
सूचना एवं प्रचार निदेशालय
राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार
भागीदारी
श्रीमती शीला दीक्षित
मुख्यमंत्री, दिल्ली
दिल्ली सरकार
DIP/1380/07-08
KH-01/08/04

ओजोन परत का बढ़ता क्षरण

विनोद कुमार यादव

ओजोन' शब्द यूनानी भाषा के ओजियन शब्द से विकसित हुआ है जिसका मतलब होता है 'सूंघना'। ओजोन गैस (O_3) ऑक्सीजन का एक अपरूप है जिसके प्रत्येक अणु में तीन परमाणु होते हैं। ओजोन की खोज क्रिश्चियन फ्रेडरिक स्कोनबिन द्वारा की गयी थी, जिन्होंने 1840 में इसका नाम 'ओजोन' रखा। यह एक हल्की नीली व अत्यधिक जहरीली गैस होती है जिसमें तीव्र गंध होती है। ओजोन का क्वथनांक–111.9^{0}C (–169.52 °F) और गलनांक–192.5°C (–314.5 °F) होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व 2.144 और हिमांक –251.4 °C (–420 °F) होता है। यह 100 °C (212°F) पर अथवा कमरे के तापमान पर कुछ उत्प्रेरकों की उपस्थिति में तेजी से विघटित होती है। तरल ओजोन एक गहरी नीली शक्तिशाली चुम्बकीय गुण वाला तरल होती है।

जब एक विद्युत स्फुलिंग ऑक्सीजन से होकर गुजरता है तो ओजोन का निर्माण होता है। ओजोन की उपस्थिति विद्युत मशीनरी के पास पहचाने जाने योग्य गंध उत्पन्न करती है। एक शांत विद्युत स्फुलिंग से ठंडा, सूखा ऑक्सीजन गुजार कर ओजोन का व्यावसायिक उत्पादन किया जाता है। ओजोन साधारण ऑक्सीजन की तुलना में रासायनिक रूप से काफी सक्रिय होती है और एक बेहतर ऑक्सीकरण एजेंट होती है।

ओजोन एक अत्यधिक अभिक्रियाशील गैस है और शीघ्र ही एल्केन के डबल बांड से जुड़ जाती है। एक यौगिक के द्वारा और भी तेजी से कई चरणों में डबल बांड विभाजित होकर ओजोनाइड का निर्माण करता है। ओजोन का उत्तरवर्ती जल–अपघटन दो यौगिक प्रदान करता है, जिसमें से प्रत्येक के पास एक कार्बोनिल समूह होता है। इस संपूर्ण प्रक्रिया को ओजोनीकरण कहते हैं। इसका उपयोग जल के शुद्धीकरण, वायु को विसंक्रमित करने और कई प्रकार के खाद्य पदार्थों के विरंजन में होता है। लेकिन मोटर वाहनों एवं औद्योगिक स्रोतों से उत्सर्जित नाइट्रोजन ऑक्साइड एवं आर्गेनिक गैसों से निर्मित वायुमंडल स्वास्थ्य के लिए घातक होता है और इससे कुछ क्षेत्रों में फसलों को भारी नुकसान पहुंच सकता है।

1998 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण संरक्षण अभिकरण (ईपीए) ने एक नया वायु नियम निर्धारित किया ताकि कोयले के दहन वाले विद्युत संयंत्रों से मुक्त नाइट्रोजन ऑक्साइड पर अंकुश लगाया जा सके। क्षोभमंडल से ऊपर के वायुमण्डल को समताप मंडल कहते हैं। समताप मंडल में वायु का तापमान ऊंचाई के बढ़ने के साथ बढ़ता जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि समताप मण्डल में मौजूद ओजोन सूर्य से ऊर्जा, मुख्य रूप से पराबैंगनी विकिरण प्राप्त करती है। यद्यपि समताप मंडल में ओजोन की मात्रा काफी कम होती है फिर भी यह काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह पृथ्वी पर रहने वाले जीवों को सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी विकिरण से बचाती है। हालांकि पृथ्वी के निकट उत्सर्जित होने वाले क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सीएफसी) तड़ित झंझा के ऊपर उठने से पुनः समताप मंडल में पहुंच सकते हैं। समताप मण्डल में पहुंचकर ये रसायन ओजोन परत को नष्ट करने में सहायक हो सकते हैं। कभी–कभी समताप मंडल में सीएफसी की मात्रा काफी अधिक हो जाती है जिससे एक बड़े क्षेत्र में संपूर्ण ओजोन नष्ट हो जाती है और ओजोन परत में छिद्र बन जाता है। हाल के वर्षों में इस प्रकार के छिद्र अंटार्कटिक के ऊपर कई जगह देखे गये हैं। शीतोष्ण कटिबंध के कई क्षेत्रों में कभी–कभी ओजोन परत काफी पतली हो जाती है।

ओजोन परत पृथ्वी से 19 से 48 किमी ऊपर 12 से 30 मीटर मोटाई का एक वायुमंडलीय क्षेत्र है। ओजोन परत में ओजोन का संकेंद्रण 10 पार्ट्स पर मिलियन (पीपीएम) होता है। वहां यह प्राथमिक रूप से लघु तरंग सौर पराबैंगनी विकिरण (242 नैनोमीटर से कम तरंगदैर्घ्य) के परिणामस्वरूप निर्मित होती है, जो सामान्य आणविक ऑक्सीजन (O_2) को दो ऑक्सीजन परमाणुओं में तोड़ देता है। ये ऑक्सीजन परमाणु इसके बाद अविघटित आणविक ऑक्सीजन से जुड़कर ओजोन का निर्माण करते हैं। ओजोन एक बार निर्मित होने के बाद 300 नैनोमीटर से कम तरंगदैर्घ्य के सौर पराबैंगनी विकिरण द्वारा आसानी से नष्ट किया जा सकता है। यह प्रक्रिया लाखों वर्षों तक चलती रहेगी लेकिन वायुमंडल में प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले नाइट्रोजन यौगिकों ने ओजोन का संकेन्द्रण स्थिर अवस्था में बनाये रखा है। निचले स्तर पर ओजोन का यह संकेंद्रण श्वास के लिए काफी खतरनाक होता है और फेफड़ों को नष्ट कर सकता है। हालांकि ओजोन परत पृथ्वी पर निवास करने वाले जीवों को सूर्य के कैंसरकारक पराबैंगनी विकिरण से बचाती है, अतः यह काफी महत्वपूर्ण है। 1970 में ये खोज होने के बाद क्लोरोफ्लोरोकार्बन या सीएफसी कहलाने वाले रसायन, जो लंबे समय से रेफ्रीजरेटर में और एयरोसॉल स्प्रे प्रणोदक के रूप में इस्तेमाल किये जाते रहे हैं, ओजोन परत को नुकसान पहुंचाते हैं, वैज्ञानिक जगत में चिंता की लहर दौड़ गयी। वायुमंडल में मुक्त होने के बाद क्लोरीनयुक्त ये रसायन ऊपर उठते हैं, और सूर्य के प्रकाश द्वारा तोड़ दिये जाते हैं, जहां क्लोरीन ओजोन से अभिक्रिया

कर उसके अणुओं को नष्ट कर देती है। इस कारण ही अमेरिका और अन्य देशों में एयरोसॉल में सीएफसी का प्रयोग प्रतिबंधित किया गया है। ब्रोमीन हैलोकार्बन और उर्वरकों से प्राप्त नाइट्रस आक्साइड जैसे कुछ अन्य रसायन भी ओजोन परत को नुकसान पहुंचा सकते हैं। ओजोन परत के विनाश से त्वचा कैंसर और मोतियाबिन्द के मामलों में वृद्धि, कुछ फसलों, प्लवकों और समुद्री खाद्य श्रृंखला को नुकसान तथा पौधों एवं प्लवकों के कम होने के कारण कार्बन डाइऑक्साइड में वृद्धि हो सकती है।

जलवायु परिवर्तन के आकलन के लिए वैज्ञानिकों का एक अंतर्राष्ट्रीय दल बनाया गया था तथा जलवायु परिवर्तन पर पहली रिपोर्ट 'द आईपीसीसी साइंटिफिक एसेसमेंट 1990' में प्रकाशित की गयी और इसकी पूरक रिपोर्ट 1992 में प्रकाशित हुई। वर्तमान एवं अतीत के जलवायु के अपने अध्ययन और विभिन्न स्तरों पर ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के प्रभाव की गणना से वैज्ञानिकों ने कई भविष्यवाणियां की कि मौसम में किस प्रकार का बदलाव आएगा। भूमंडलीय तापन में वृद्धि और समुद्र के जलस्तर में वृद्धि अवश्यंभावी है लेकिन विरोधाभास यह है चूंकि मानवता पहले से ही एक अंतरहिमानी युग में रह रही है, भूमंडलीय तापन में वृद्धि वास्तव में एक और हिमानीकरण की शुरुआत को रोकने में सहायता कर सकती है। यद्यपि इससे समुद्र के जलस्तर में उल्लेखनीय वृद्धि तथा निचले क्षेत्रों में संगत प्रभाव पड़ेगा।

उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में स्थित देशों तथा भूमंडल के अन्य हिस्सों में यह प्रायः बड़ी चिंता का कारण हो सकता है। ऊर्जा संयंत्रों तथा मोटर वाहनों से वायुमंडल में उत्सर्जित नाइट्रोजन डाइऑक्साइड ओजोन को तोड़ती है और वायुमंडलीय प्रदूषकों से अभिक्रिया कर विद्युत रासायनिक धूम कोहरे का निर्माण करती है।

1980 के दशक की शुरूआत में अंटार्कटिका में अनुसंधान कार्य कर रहे वैज्ञानिकों ने उस महाद्वीप के ऊपर के वायुमंडल में नियमित रूप से ओजोन के स्तर में कमी होते देखी। ओजोन छिद्र, जो ओजोन परत का एक पतला क्षेत्र है, 1985 में खोजा गया था। यह अंटार्कटिका के ऊपर वसंत में विकसित होता है और कई महीनों तक कायम रहता है। उच्च अक्षांशों में भेजे जाने वाले गुब्बारे तथा मौसम उपग्रहों से यह पता चलता है कि अंटार्कटिका के ऊपर ओजोन परत में ओजोन की कुल प्रतिशतता वास्तव में घट रही हैं।

1998 में अमेरिकी उपग्रहों से किये गये अध्ययन से यह पता चला कि ओजोन छिद्र, जो अंटार्कटिका के ऊपर हर वर्ष प्रकट होने वाला ओजोन विलुप्ति क्षेत्र है, 1985 में अपनी खोज के बाद इस वर्ष सबसे बड़ा था। इन निष्कर्षों को वहां के राष्ट्रीय महासागरीय और वायुमंडलीय प्रशासन और नासा द्वारा 6 अक्टूबर, 1998 को जारी किया गया। वर्ष 1998 में अगस्त के मध्य और अक्टूबर की शुरूआत में संग्रहित आंकड़ों से पता चलता है कि 19 सितम्बर को अंटार्कटिका के ऊपर ओजोन छिद्र रिकॉर्ड 2.72 करोड़ वर्ग किमी क्षेत्र तक हो गया था, जो उत्तरी अमेरिका से भी बड़ा क्षेत्र है। 7 सितम्बर, 1996 को प्राप्त पिछला रिकॉर्ड 2.6 करोड़ वर्ग किमी का था।

ओजोन छिद्र का बढ़ते जाना चिंता का विषय है क्योंकि वैज्ञानिकों का मानना है कि ओजोन को विलुप्त करने वाली वायु अंततः विसरित होकर वायुमंडल की संपूर्ण ओजोन परत को नष्ट कर देगी। ओजोन परत में कमी से पृथ्वी पर विशेषकर दक्षिणी गोलार्द्ध में अधिक मात्रा में पराबैंगनी किरणें पहुंचेंगी। वायु नमूनों के अध्ययनों से यह पता चला कि समुद्र की सतह से 88 किमी ऊपर वायुमंडल का संघटन तात्विक रूप से भूमिगत स्तर के समान है। वायुमंडलीय वायुधाराओं द्वारा उत्पन्न हलचल भारी गैसों की हल्की गैसों से नीचे रहने की प्रवृति को प्रभावहीन कर देती है। निचले वायुमंडल में ओजोन आमतौर पर अत्यधिक निम्न संकेंद्रण में रही है। 19 से 48 किमी की वायुमंडलीय परत में अधिक ओजोन होती है जो सूर्य से प्राप्त पराबैंगनी विकिरण की क्रिया से निर्मित होती है। हालांकि इस परत में आयतन के हिसाब से ओजोन की प्रतिशतता सिर्फ 0.01 होता है। वायुमंडलीय विक्षोभ और निचली धाराएं इस ओजोन की परिवर्तित होती मात्रा को पृथ्वी की सतह तक लाती हैं। मानवीय गतिविधियों से निचले वायुमंडल में ओजोन में वृद्धि होती है जहां यह एक प्रदूषक बन जाती है जो फसलों को व्यापक नुकसान पहुंचा सकती है।

1987 में ओजोन परत की रक्षा के लिए एक समझौता 'मांट्रियल प्रोटोकॉल' पर हस्ताक्षर किया गया और बाद में अमेरिका सहित 36 देशों ने इसे अनुमोदित किया। 1990 के दशक के दौरान यूरोपीय समुदाय अब यूरोपीय आयोग द्वारा क्लोरो–फ्लोरोकार्बन के उपयोग पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने के प्रस्ताव को अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश का भी सहयोग मिला। दिसंबर 1995 में 100 से अधिक देश विकसित देशों में इस्तेमाल होने वाले मेथिल ब्रोमाइड नामक कीटनाशक को समाप्त करने को सहमत हुए, जिससे वर्ष 2000 तक 15 प्रतिशत ओजोन के क्षरण की संभावना व्यक्त की गयी थी। विकसित देशों में क्लोरोफ्लोरोकार्बन का उत्पादन 1995 में रोक दिया गया और विकासशील देशों में 2010 तक इस पर अंकुश लगाया जा सकेगा। हाइड्रोक्लोरो–फ्लोरोकार्बन (एचसीएफसी) जो सीएफसी की तुलना में ओजोन परत को कम नुकसान पहुंचाता है, 2020 तक विकसित देशों में और 2016 तक विकासशील देशों में सीएफसी के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहेगा। वैश्विक स्तर पर ओजोन के क्षरण की निगरानी के लिए 1991 में नासा ने ऊपरी वायुमंडल में अनुसंधान के लिए एक उपग्रह प्रक्षेपित किया। पृथ्वी की 600 किमी ऊंचाई की कक्षा में परिक्रमा करने वाला यह उपग्रह विभिन्न अक्षांशों पर ओजोन की विविधता की माप करता है। इससे ऊपरी वायुमंडल के रसायन की पहली संपूर्ण तस्वीर प्रदान की है।

विश्व जलवायु विज्ञान संगठन ने 1995 –96 के जाड़े के दौरान कई दिनों तक ग्रीनलैण्ड से पश्चिमी साइबेरिया तक उत्तरी गोलार्द्ध के एक तिहाई से अधिक क्षेत्र में ओजोन परत में 45 प्रतिशत तक की कमी देखी। ओजोन में इस कमी का कारण क्लोरीन और ब्रोमीन यौगिकों को माना गया जो अत्यधिक कम तापमान पर ध्रुवीय समताप मंडलीय वायुमंडल से संयुक्त हो जाते हैं।

कई उपायों ने ओजोन क्षरण करने वाले यौगिकों के वैश्विक उपयोग पर अंकुश लगाया है। इसमें 1987 का मांट्रियल प्रोटोकॉल शामिल है, जो वायुमंडल में उद्योगों द्वारा मुक्त होने वाले सीएफसी पर अंकुश लगाने के लिए हुआ एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है। हालांकि एक बार मुक्त होने के बाद सीएफसी ऊपरी वायुमंडल में 100 वर्षों तक रह सकता है। कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस प्रकार के पदार्थों से होने वाली ओजोन की हानि 2015 से पहले नहीं रोकी जा सकेगी।

वैज्ञानिकों का मानना है कि 1998 में ओजोन परत में होने वाला काफी बड़ा छिद्र समताप मंडल के ठंडे तापमान से जोड़ा जा सकता है। निम्न तापमान से ओजोन का बड़े पैमाने पर विनाश होता है क्योंकि इससे बर्फ के क्रिस्टल निर्मित हो जाते हैं। ये क्रिस्टल एक सतह प्रदान करते हैं जो ओजोन क्षरण करने वाले यौगिकों को अधिक ओजोन अणुओं से संपर्क का अवसर प्रदान करता है। हालांकि वैज्ञानिक इस बारे में अनिश्चित हैं कि ऊपरी वायुमंडल का तापमान ठंडा क्यों होता है। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि इस प्रकार के शीतलन को मानव द्वारा ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि से जोड़ा जा सकता है। कम्प्यूटर सिमुलेशन से यह पता चला है कि पृथ्वी की सतह के नजदीक की गर्मी से ऊपरी वायुमंडल में शीतलन को बढ़ावा मिल सकता है।

कालांतर से ओजोन परत ने सूर्य की पराबैंगनी किरणों को अवशोषित किया और वायुमंडल की जलवाष्प को पराबैंगनी विघटन से बचाया। सजीव अवयवों के लिए भी उतनी ही आवश्यक ओजोन परत आनुवंशिक पदार्थों के दुर्बल रासायनिक बंध को पराबैंगनी किरणों से नष्ट होने से बचाती है। 1970 और 1980 के दशक में वैज्ञानिकों ने यह स्वीकार किया कि मानव निर्मित रसायन ओजोन परत को नष्ट कर रहे हैं और इन रसायनों का उत्पादन चरणबद्ध रूप से बंद करने हेतु अंतर्राष्ट्रीय समझौते किये गये हैं।

ओजोन छिद्र भरने के संकेत

16 सितंबर, 2002 को ओजोन दिवस के अवसर पर संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम और विश्व मौसम विज्ञान संगठन ने अपनी रिपोर्ट पेश की थी। इसके मुताबिक ओजोन परत में बना छेद अब भरने लगा है। उत्तरी अमेरिका के आकार के बराबर (करीब एक करोड़ वर्ग मील) बने इस छिद्र को भरने में अभी वर्षों लगेंगे, क्योंकि मांट्रियल प्रोटोकॉल समझौते के तहत अभी बहुत से देश क्लोरोफ्लोरोकार्बन के उपयोग को सीमित नहीं कर पाये हैं।

यह एक सुखद समाचार है कि पृथ्वी की ओजोन छतरी में हुए सूराख की मरम्मत के संकेत मिलने लगे हैं। पर्यावरणविदों और वैज्ञानिकों के लिए ही नहीं, विकसित और विकासशील देशों के बीच भी यह बड़े विवाद और चिंता का विषय बना रहा है। 1987 में मांट्रियल प्रोटोकॉल में विकसित देशों ने यह वादा किया था कि वे 2007 तक ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाले रसायनों के उत्पादन में 85 प्रतिशत कटौती कर देंगे। लेकिन आज भी पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाले पदार्थों और रसायनों का सबसे ज्यादा उत्पादन और इस्तेमाल वह कर रहे हैं। इसमें ओजोन छतरी का विवाद सबसे गम्भीर है, क्योंकि इससे पूरी पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व का प्रश्न जुड़ा हुआ है। 1950 के आस पास यह मालूम हो गया था कि हम कुछ ऐसी गैसें इस्तेमाल कर रहे हैं, जो इस ओजोन परत को नुकसान पहुंचा रही हैं। इनमें क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सीएफसी) जैसे रसायन सबसे घातक थे, जिनका प्रयोग 1930 से फ्रिज और एयरकंडीशनर बनाने में हो रहा था। वातावरण को ठंडा करने के लिए बनी मशीनें उस जमाने के लिए महान वैज्ञानिक उपलब्धियां थीं और इनमें सीएफसी के इस्तेमाल पर तब विचार करने की जरूरत नहीं समझी गयी थी, लेकिन दो दशकों के बाद यह पता चला कि वह सीएफसी ओजोन परत को नुकसान पहुंचा रही है। सातवें आठवें दशक में जब ओजोन की छतरी में छेद नजर आने लगे, तब तमाम देशों ने इस पर गंभीरता से विचार करना शुरू किया। वातावरण में क्लोरीन और सीएफसी जैसे तत्वों के परिणाम के आंकड़े एकत्र कर रहे वैज्ञानिक बता रहे हैं कि सन 2000 के बाद से इनमें कमी आयी है और ऐसे संकेत मिल रहे हैं कि ओजोन छतरी में जो सूराख नजर आये थे, उनकी अपने आप धीरे–धीरे मरम्मत भी हो रही है। लेकिन यदि आगे हमने उसे और कोई नुकसान नहीं पहुंचाया तो भी उसे पूरी तरह से ठीक होने में पचास साल और लगेंगे।

ओजोन संरक्षण के लिए भारतीय प्रयास

184 देशों द्वारा हस्ताक्षरित मांट्रियल प्रोटोकॉल के निर्देशों के अनुसार भारत ओजोन परत को बचाने में इस प्रकार अहम योगदान अदा कर रहा है –

- मांट्रियल प्रोटोकॉल के बहुपक्षीय कोष द्वारा अनुमोदित परियोजनाओं के माध्यम से भारत ने लगभग 9190 टन ओजोन क्षरण के लिए जिम्मेदार पदार्थों (ओ.डी.एस.) के उपभोग पर रोक लगा दी है।
- पिछले तीन वर्षों (1999–2002) के दौरान भारत ने 5600 मीट्रिक टन क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सीएफसी) का उत्पादन बंद कर दिया।

- हैलोन्स के उत्पादन एवं उपभोग पर पूरी तरह से रोक लगा दी गयी है।
- ओजोन परत के क्षरण के लिए उत्तरदायी इन पदार्थों पर रोक लगाने के लिए भारत को अब तक 725 करोड़ रुपये प्राप्त हुए हैं।
- एक राष्ट्रीय कार्बन टेट्रा क्लोराइड प्रतिबंध योजना (उत्पादन और उपभोग दोनों के लिए) को स्वीकृति प्रदान की गयी है। इस योजना की कुल लागत 234 करोड़ रुपये है।

ओजोन परत बचाने की शुरूआत 1972 में स्टाकहोम में हुए प्रथम संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सम्मेलन में हुई। इस सम्मेलन में सैकड़ों सुपर सैनिक विमानों द्वारा ओजोन परत को होने वाली क्षति पर ध्यान देने का निर्णय लिया गया। ओजोन परत की क्षति के संबंध में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहली कार्यवाही के रूप में वर्ष 1977 में वाशिंगटन में 32 देशों की एक बैठक हुई, जिसमें ओजोन परत की सुरक्षा के लिए एक कार्य योजना को अपनाया गया। अंटार्कटिका के ऊपर स्थित ओजोन परत की भारी क्षति के बारे में जानकारी 1985 के वियना सम्मेलन में दी गयी। इस सम्मेलन में निर्णय किया गया था कि विश्व के सब देश ओजोन पर रसायनों का प्रभाव तथा इसके मनुष्य के स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव की सूचना का आदान–प्रदान करेंगे।

ओजोन परत को बचाने की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण सम्मेलन कनाडा के शहर मांट्रियल में सितम्बर 1987 में हुआ। इस सम्मेलन में लिए गये निर्णयों में 1990 में विकासशील देशों को आश्वस्त करने के लिए संशोधन किया गया। इसमें निर्णय लिया गया कि ओजोन को नष्ट करने वाली गैसों का प्रयोग बंद कर दिया जाए। यह भी निर्णय लिया गया कि ओजोन को नुकसान पहुंचाने वाली गैसों का उत्पादन और प्रयोग विकासशील देश धीरे–धीरे, परन्तु विकसित देश जल्दी बंद कर दें। इस सम्मेलन में ओजोन के लिए खतरनाक गैसों के स्थान पर दूसरी निरापद गैसों के प्रयोग के लिए विकासशील देशों को आर्थिक सहायता देने की बात कही गयी थी। इसके बाद 1992 में डेनमार्क के शहर कोपनहेगन में हुए एक समझौते में ओजोन को नष्ट करने वाली गैसों को जल्दी से जल्दी समाप्त करने की बात कही गयी थी।

भारत ने इस समझौते पर 1992 में हस्ताक्षर किये। भारत के दबाव के कारण इसमें एक अनुच्छेद 5 जोड़ा गया था। इस अनुच्छेद के अनुसार ओजोन हानिकारक पदार्थों के प्रति व्यक्ति 300 ग्राम से कम खपत वाले देशों में इन पदार्थों के प्रयोग को बंद करने तथा तकनीकी हस्तांतारण के व्यय को विकसित देशों द्वारा वहन किया जाएगा। भारतीय रिजर्व बैंक ने सभी वित्तीय संस्थाओं और बैंकों को निर्देश जारी कर ओ.डी.एस. तकनीकी वाले नए उद्योगों को वित्तीय सहायता देने पर रोक लगा दी है। ओडीएस के आयात और निर्यात को नियमित करने के लिए लाइसेसिंग प्रणाली शुरू की गयी। मांट्रियल संधि का पालन सुनिश्चित करने व कानूनी सुविधा प्रदान करने के लिए ओडीएस नियमन एवं नियंत्रण नियम, 2000 भी अधिसूचित किया गया है। इस नियम के अंतर्गत कुछ आवश्यक दवाइयों के उत्पादन को छोड़कर विभिन्न उत्पादों में पहली जनवरी, 2003 के बाद भी सीएफसी के इस्तेमाल पर रोक लगा दी गयी थी।

ओजोन परत का छेद अंटार्कटिका के ऊपर स्थित है। यह सामान्यतः सितम्बर और अक्टूबर के दौरान बढ़ता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 23 जनवरी 1995 को एक प्रस्ताव पारित किया। इसमें ओजोन की छीजती परत की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने और इसे सुरक्षित बनाए रखने तथा जन–सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से 16 सितम्बर को अंतर्राष्ट्रीय ओजोन दिवस मनाने की घोषणा की गयी थी। 16 सितम्बर का दिन इसलिए चुना गया क्योंकि इसी दिन 1987 में ओजोन के छीजने के लिए जिम्मेदार पदार्थों को धीरे–धीरे समाप्त करने वाली मांट्रियल संधि पर हस्ताक्षर किए गये थे। इसी बात को ध्यान में रखते हुए शनिवार 16 सितम्बर 1995 को विश्वभर में पहला ओजोन दिवस मनाया गया था। परन्तु मात्र ओजोन परत दिवस मनाने से ही इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास नहीं कहलाए जा सकते हैं। इसके लिए आवश्यकता है विकासशील, विकसित देशों और अंतर्राष्ट्रीय संघों के बीच आपसी तालमेल की, तभी हमें इस कार्य में सफलता प्राप्त हो सकती है।

अतः हम सब को इस पृथ्वी ग्रह को बचाने के लिए समन्वित एवं प्रतिबद्ध प्रयास करना होगा। साथ ही, यह प्रण करना होगा कि हम ओजोन परत के क्षरण पर नियंत्रण स्थापित करने में अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान करेंगे।

(लेखक पर्यावरण सम्बन्धी मामलों के जानकार है तथा न्यायायिक पद पर कार्यरत है)

ई–मेल : vinod_729@rediffmail.com

कुरुक्षेत्र मंगवाने का पता

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक

प्रकाशन विभाग

पूर्वी खंड-4, तल-7

रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

ग्लोबल वार्मिंग का धरती पर प्रभाव

मयंक श्रीवास्तव

पर्यावरण जैव मण्डल का आधार है, लेकिन औद्योगिक क्रांति के बाद से विकास की जो तीव्र प्रक्रिया अपनाई गयी है उसमें पर्यावरण के आधारभूत नियमों की अवहेलना की गयी जिसका परिणाम पारिस्थितिक असंतुलन एवं पर्यावरणीय निम्नीकरण के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है। आज विश्व के विकसित देश हो अथवा विकासशील देश, कोई भी पर्यावरण प्रदूषण के कारण उत्पन्न गंभीर समस्या से अछूता नहीं है। 1970 के दशक में ही यह अनुभव किया गया कि वर्तमान विकास की प्रवृत्ति असंतुलित है एवं पर्यावरण की प्रतिक्रिया उसे विनाशकारी विकास में परिवर्तित कर सकती है। तब से लेकर वर्तमान वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय निम्नीकरण की समस्या के समाधान हेतु कई योजनाएं प्रस्तुत की गयी, समाधानमूलक उपायों पर व्यापक विचार–विमर्श हुआ। बावजूद इसके वास्तविक उपलब्धियां अति न्यून ही रहीं। तो उसका तात्पर्य यह निकाला जाये कि वैश्विक स्तर पर ईमानदार प्रयास नहीं किए गये। साथ ही विभिन्न राष्ट्रों ने राष्ट्रीय आर्थिक विकास को कहीं अधिक महत्वपूर्ण माना एवं पर्यावरणीय असंतुलन के प्रति उदासीन बने रहे। उन तथ्यों की समीक्षा से पूर्व आवश्यकता है कि संक्षेप में उन समस्याओं पर विचार किया जाये जो पर्यावरणीय प्रदूषण को उत्पन्न कर रही हैं एवं जिनके कारण सम्पूर्ण जैव जगत के समक्ष गम्भीर चुनौती उत्पन्न हो गयी है।

ग्लोबल वार्मिंग के कारण प्रकृति में बदलाव आ रहा है। कहीं भारी वर्षा तो कहीं सूखा, कहीं लू तो कहीं ठंड। कहीं बर्फ की चट्टानें टूट रही हैं तो कहीं समुद्री जल स्तर में बढ़ोत्तरी हो रही हैं। आज जिस गति से ग्लेशियर पिघल रहे हैं इससे भारत और पड़ोसी देशों को खतरा बढ़ सकता है। ग्लोबल वार्मिंग से फसल चक्र भी अनियमित हो जायेगा इससे कृषि उत्पादकता भी प्रभावित होगी। मनुष्यों के साथ–साथ पक्षी भी इस प्रदूषण का शिकार हो रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग पक्षियों के दैनिक क्रियाकलाप और जीवन चक्र को प्रभावित करता है।

ग्लोबल वार्मिंग के दुष्प्रभाव से परेशान पक्षी

ग्लोबल वार्मिंग में सर्वाधिक योगदान Co_2 का है। 1880 से पूर्व वायुमण्डल में Co_2 की मात्रा 280 पार्ट्स पर मिलियन (पीपीएम) थी जो आज आईपीसीसी रिपोर्ट के अनुसार 379 पीपीएम हो गई है। Co_2 की वार्षिक वृद्धि दर गत वर्षों में (1995–2005) 1.9 पीपीएम वार्षिक है। आईपीसीसी ने भविष्यवाणी की है कि सन् 2100 आते–आते इसके तापमान में 1.1 से 6.4°C तक बढ़ोत्तरी हो सकती है। सदी के अंत तक समुद्री जल स्तर में 18 से 58 सेमी तक वृद्धि की संभावना है। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि 2080 तक 3.20 अरब लोगों को पानी उपलब्ध नहीं होगा। 60 करोड़ लोग भूखों मरेंगे। खासकर के इससे अल्पविकसित देशों को हानि होगी। अल्पाइन क्षेत्रों और दक्षिणी अमेरिका के आमेजन वन के समाप्त हो जाने की सम्भावना है। प्रशांत क्षेत्र के कई द्वीप जलमग्न हो जाएंगे। वायुमंडल के इस प्रकार के परिवर्तन को रेडिएटिव फोर्सिंग द्वारा मापा जाता है। आईपीसीसी के प्रमुख आर.के. पचौरी ने जलवायु परिवर्तन के लिए निम्न कारकों को उत्तरदायी बताया है।

- औद्योगीकरण (1880) से पूर्व Co_2 की मात्रा 280 पीपीएम थी जो अब (2005 के अंत में) बढ़कर 379 पीपीएम हो गयी है।
- औद्योगीकरण से पूर्व मीथेन की मात्रा 715 पार्ट्स पर बिलियन (पीपीबी) थी और 2005 में बढ़कर 1734 पीपीबी हो गयी है।
- मीथेन की सान्द्रता में वृद्धि के लिए कृषि एवं जीवाश्म ईंधन को उत्तरदायी माना गया है।
- उपरोक्त वर्षों में नाइट्रस आक्साइड की सान्द्रता क्रमशः 270 पीपीबी से बढ़कर 319 पीपीबी हो गयी है।
- समुद्री तापमान में भी 3000 मि.मी. वृद्धि हुई है।
- समुद्री जलस्तर में

वृद्धि 1961 के मुकाबले 2003 में औसत वृद्धि 1.8 मि.मी. हुई है।

- पिछले 100 वर्षों में अंटार्कटिका के तापमान में दोगुना वृद्धि हुई है तथा इसके बर्फीले क्षेत्रफल में भी कमी आयी है।
- मध्य एशिया, उत्तरी यूरोप, दक्षिणी अमेरिका आदि में वर्षा की मात्रा में वृद्धि हुई है तथा भूमध्य सागर, दक्षिणी एशिया और अफ्रीका में सूखा में वृद्धि दर्ज की गई है।
- मध्य अक्षांशों में वायु प्रवाह में तीव्रता आयी है।
- उत्तरी अटलांटिक से उत्पन्न चक्रवातों की संख्या में वृद्धि हुई है।

आईपीसीसी की रिपोर्ट में इस बात की चेतावनी दी गयी है कि समस्त विश्व के पास ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन कम करने के लिए मात्र 10 वर्ष का समय और है। यदि ऐसा नहीं होता है तो समस्त विश्व को इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा।

कुछ वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वैश्विक तापन से पृथ्वी की अपनी धुरी पर घूमने की गति में लगातार कमी होती जा रही है। जर्मनी के वैज्ञानिकों के एक शोध के अनुसार भविष्य में पैदा होने वाली संतान में लड़कों की संख्या बढ़ेगी जिसका कारण लड़कों का लिंग निर्धारण करने वाले Y- गुण सूत्र में गर्मी को सहन करने की क्षमता अधिक होती है। अभी तक के इतिहास में 1990 का दशक सर्वाधिक गर्म रहा।

आइए अब हम वायुमंडलीय प्रदूषण के कारणों की चर्चा करते है जिसमें ग्रीन हाउस प्रभाव और ओजोन क्षरण मुख्य है।

वर्ष 2004 में (CO_2) की मात्रा

देश	(CO_2) की मात्रा (बिलियन टन प्रति वर्ष)	प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष
अमेरिका	5.9	23.6 टन
चीन	4.7	1.0 टन
रूस	1.7	4.7 टन
जापान	1.3	10 टन
भारत	1.1	1 टन

ग्लोबल वार्मिंग में विभिन्न देशों का योगदान (प्रतिवर्ष में)

संयुक्त राज्य अमेरिका	30.3	जापान	3.7
यूरोप	27.7	पश्चिम एशिया	2.6
सोवियत संघ	13.7	अफ्रीका	2.5
भारत,चीन और विकासशील एशिया	12.2	आस्ट्रेलिया	1.1
दक्षिण और मध्य अमेरिका	3.8	कनाडा	2.3

ग्रीन हाउस प्रभाव – वायुमंडल के संघटन में CO_2 एक महत्वपूर्ण कारक है। कुछ और अन्य गैसें और CO_2 सूर्य की किरणों का अवशोषण करके वायुमण्डल को अपेक्षित ताप तक गर्म रखती है। इसे ही ग्रीन हाउस प्रभाव कहते हैं। इस प्रभाव में मुख्य भूमिका CO_2 के अलावा CH_4,CFC, N_2O और O_3 गैसें हैं। ये गैसें पृथ्वी के चारों ओर एक आवरण बना लेती हैं। जिसमें सौर विकिरण प्रवेश तो कर लेता है लेकिन वापस नहीं जा पाता है और पृथ्वी तथा वायुमण्डल दोनों का ताप बढ़ता है। ग्रीन हाऊस प्रभाव की घटना बहुत पुरानी है। लेकिन इस पर पहले ध्यान नहीं दिया जाता था। जब औद्योगीकरण की शुरुआत हुई तो यह प्रभाव चर्चा में आया।

यदि वर्तमान गति से पर्यावरण प्रदूषण जारी रहा तो आने वाले 75 वर्षों में पृथ्वी के तापमान में 3–6 ^{0}C की वृद्धि हो सकती है। जिसके बर्फ के पिघलने से समुद्री जल स्तर में 1 से 1.2 फीट तक की वृद्धि हो सकती है और मुम्बई, न्यूयार्क, पेरिस, लंदन, मालदीव, हालैण्ड और बंग्लादेश जैसे देशों के अधिकांश भूखण्ड समुद्र में जलमग्न हो सकते हैं।

ग्लोबल वार्मिंग के संकेत

- फैलती बीमारियां।
- ऋतुओं का समय–पूर्व आगमन।
- वनस्पति और जीवों के क्रिया कलाप में परिवर्तन।
- पानी के ताप में वृद्धि से मूंगा भित्ति संकट में।
- भारी वर्षा, बाढ़, बर्फबारी, सूखा आदि।

ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव

- तापमान में तीव्र बढ़ोत्तरी।
- समुद्री जल स्तर में वृद्धि।
- पहाड़ों से पिघलते ग्लेशियर।
- जल संकट।

ग्लोबल वार्मिंग कम करने के उपाय

- CO_2 का स्तर कम किया जाये।
- विभिन्न माध्यमों से कूड़ा करकट कम करें।
- बिजली के उपकरणों के अनावश्यक प्रयोग से बचें।
- वनों का संरक्षण करें।
- आम बल्बों के स्थान पर सी.एफ.एल. का प्रयोग करें।
- वृक्षारोपण कार्यक्रम चलाया जाये।
- आक्सीजन के लिए वनों का बचाव आवश्यक।

ओजोन क्षरण – वायुमण्डल के स्ट्रेटोस्फीयर में 20 किमी. की मोटाई में ओजोन गैस पायी जाती है। ओजोन (O_3) अत्यन्त क्रियाशील गैस मानी जाती है। सूर्य के प्रकाश की पराबैंगनी किरणें अंतरिक्ष से पृथ्वी की ओर आती हैं तो पृथ्वी के वायुमण्डल की समताप मण्डल परत पर उपस्थित आक्सीजन के अणुओं को

परमाणुओं में तोड़ देती हैं। आक्सीजन के ये एकांकी परमाणु उसके अणु से मिलकर ($O_2+O=O_3$) ओजोन का निर्माण करते हैं। ओजोन अपनी सक्रियता के कारण नाइट्रस आक्साइड के साथ क्रिया करके विघटित होती है। इस प्रकार विनाश और निर्माण की प्राकृतिक प्रक्रिया से गतिक संतुलन बना रहता है। इस संतुलन में उस समय बाधा आती है जब वायुमंडल में सीएफसी तथा क्लोरीन युक्त अन्य यौगिक (हेलोन्स, कार्बन टेट्राक्लोराइड) अधिक मात्रा में आने लगते हैं। अब ये क्लोरीन के परमाणु ओजोन के साथ क्रिया करके क्लोरीन मोनो आक्साइड (सीएलओ) बनाते हैं तथा ओजोन को आक्सीजन में तोड़ देते हैं। इसे ओजोन क्षरण कहा जाता है। क्लोरीन पुनः उत्प्रेरक का कार्य करता है और अभिक्रिया क्रियाशील रहती है।

ओजोन छिद्र का पता सर्वप्रथम 1973 में अमेरिका वैज्ञानिकों ने अण्टार्कटिका के ऊपर लगाया। 1985 में जोसफ फोरमेन ने ओजोन परत में 50 प्रतिशत का ह्रास देखा। ओजोन ह्रास मानव के लिए चिन्ता का विषय है। क्योंकि इससे मनुष्य को अनेक बीमारियां हो सकती हैं। जिसमें प्रमुख हैं चर्म कैंसर, पेड़ पौधों के क्लोरोफिल पर भी विपरीत प्रभाव देखा जा रहा है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम ओजोन क्षरण पदार्थ (ओडीसी) के स्थान पर ओजोन मित्र पदार्थ (ओएफसी) (जैसे–हाइड्रोक्लोरोफ्लोरो कार्बन) का प्रयोग करें।

क्र.सं.	वायु प्रदूषण	प्राथमिक अथवा द्वितीयक	मुख्य स्रोत
1.	ओजोन (O_3)	द्वितीयक पदार्थ	वायुमण्डलीय परिवर्तन से उत्पन्न जो स्वयं चालित वाहनों से उत्सर्जित नाइट्रोजन डाई ऑक्साइड व हाईड्रोकार्बन के प्रति क्रिया से उत्पन्न पदार्थ।
2.	सल्फर डाई ऑक्साइड (SO_2)	प्राथमिक पदार्थ	फैक्ट्रियों में ऊर्जा उत्पादक यन्त्रों/मशीनों अथवा किसी ठोस पदार्थों के पिघलाने वाले संयंत्र से उत्पन्न।
3.	नाईट्रोजन डाई ऑक्साइड (NO_2)	प्राथमिक/द्वितीयक पदार्थ	उच्च तापक्रम पर उत्पन्न ज्वलन प्रक्रिया के उपरान्त सीधे उत्पन्न या वायुमण्डलीय परिवर्तन द्वारा उत्पन्न अथवा उर्वरक के संयन्त्रों/उत्पाद द्वारा उत्सर्जित।
4.	हाइड्रोजन फ्लोराइड (HF)	प्राथमिक पदार्थ उत्पन्न	सुपर फॉस्फेट, एल्यूमिनियम गलन के दौरान।
5.	इथिलीन	प्राथमिक पदार्थ	ज्वलनशील प्रक्रिया अथवा प्राकृतिक उत्पाद।
6.	नाइट्रस ऑक्साइड (NO)	प्राथमिक पदार्थ	ज्वलनशील प्रक्रिया अथवा प्राकृतिक उत्पाद।
7.	क्लोरीन (Cl_2)	प्राथमिक पदार्थ	द्रव्य बहाव/निर्माण से उत्पन्न द्रव्य।
8.	हाइड्रोजन क्लोराइड	प्राथमिक पदार्थ	प्लास्टिक पदार्थों के ज्वलन से उत्पन्न पदार्थ।
9.	विषैली पदार्थ	प्राथमिक पदार्थ	पिघलन एवं ज्वलन प्रक्रिया से उत्पन्न पदार्थ।
10.	अमोनिया	प्राथमिक पदार्थ	प्राकृतिक रूप से उत्पन्न अथवा चारे समुच्चय के सड़न से पैदा।
11.	सल्फेट	द्वितीयक पदार्थ	सल्फर डाई ऑक्साइड के परिवर्तन से उत्पन्न।
12.	हाइड्रोजन फैरा ऑक्साइड	प्राथमिक पदार्थ	अखबार/पेपर उत्पाद मशीनों से उत्पन्न।
13.	नाइट्रेट	द्वितीयक पदार्थ	प्राकृतिक रूप से उत्पन्न या ज्वलनशील प्रक्रिया से उत्पन्न।
14.	कार्बन डाई ऑक्साइड	प्राथमिक पदार्थ	वायुमण्डलीय परिवर्तन से उत्पन्न या स्वयं चालित वाहनों से निकले (NO_2) व हाइड्रो–कार्बन के प्रति क्रिया से उत्पन्न पदार्थ।

वातावरण में तीव्र परिवर्तन की तुलना में उदासीन प्रयास

1972 – स्टाकहोम सम्मेलन, (यूएनईपी का गठन), 5 जून विश्व पर्यावरण दिवस घोषित।

1987 – मांट्रियल समझौता (48 देशों के मध्य)।

1988 – आई.पी.सी.सी. की स्थापना।

1990 – आई.पी.सी.सी. की पहली रिपोर्ट–पिछली सदी में धरती का औसत ताप 0.5° बढ़ा।

1992 – रियो सम्मेलन–एजेंडा–21 घोषणा जारी।

1996 –प्रदूषण कम करने पर अमेरिका की पहली बार सहमति।

1997 – क्योटो संधि, औद्योगिक देशों का 2012 तक ग्रीन हाउस में 5.4 प्रतिशत की कमी का वचन।

1998 – क्योटो संधि का पुनरावलोकन (ब्यूनस आयर्स में)।

2001 – अमेरिका ने कहा – क्योटो संधि कर सकती है हमारी विकास अर्थव्यवस्था को तबाह।

2002 – यूरोपीय संघ, जापान समेत कई देशों ने क्योटो की पुष्टि की लेकिन अमेरिका, आस्ट्रेलिया शामिल नहीं।

2004 – रूस भी क्योटो पर सहमत।

2005 – मांट्रियल वार्ता जारी।

जहरीली गैसों से बचाव के लिए वनों का विकास

समस्या – जलवायु परिवर्तन सम्बन्धित आईपीसीसी रिपोर्ट ने दुनिया के सभी देशों को सोचने पर मजबूर कर दिया है। लेकिन फिर भी ऐसे विकसित राष्ट्र हैं जो पर्यावरण के प्रदूषण को मजाक समझ रहे हैं और अपने कर्तव्यों से विमुख हो रहे हैं। अमेरिका जो कि सर्वाधिक प्रदूषण उत्पन्न करता है, अपने आर्थिक विकास में बाधा की दुहाई देकर पर्यावरण संबंधित समझौतों से अलग रहना चाहता है। कुछ इसी तरह की चाल आस्ट्रेलिया की है। जो देश बिल्कुल न के बराबर ग्रीन हाउस गैस उत्पन्न करते हैं उनके समझौते पर हस्ताक्षर करने से क्या लाभ जब तक प्रमुख राष्ट्र आगे न आये। हम यह नहीं कह रहे हैं कि विकासशील देशों की जिम्मेदारी कम है। जलवायु परिवर्तन की समस्या वैश्विक है और इसका सामना वैश्विक स्तर पर किया जाना चाहिए। पर्यावरणीय संगठन की प्रमुख सुनीता नारायण ने कहा है कि "अब समय आ गया है कि हम अपनी मूर्खता से बाहर निकलें और निश्चित करें कि हमें तीव्र विकास चाहिए या पर्यावरणीय सुरक्षा"।

अभी हाल ही में पेरिस में एक सम्मेलन में ग्लोबल वार्मिंग की रोकथाम के लिए 46 राष्ट्रों का संगठन बना है। इसमें विश्व के चार अधिक प्रदूषित देश –अमेरिका, चीन, रूस, भारत शामिल नहीं हुए। आखिर हम चाहते क्या हैं। कुछ दिन बाद जब हमारे सामने से सभी विकल्प उठ जायंगे तब हम पछताएंगे, अभी हमें यह बात हंसाने वाली लगती है

ग्लोबल वार्मिंग कोई सैद्धान्तिक शब्द नहीं है जिसे किताबों में पढ़ लिया और फिर दिमाग से निकाल दिया। इस सम्बंध में सरकार द्वारा जन जागरुकता फैलायी जानी चाहिए। इको–फ्रेंडली तकनीकी का विकास किया जाना चाहिए। हमने एक ग्रामीण से कहा कि चलो ग्लोबल वार्मिंग रोकने के लिए कुछ उपाय करें तो ग्रामीण का जवाब था– "हमें क्या मिलेगा जैसे सब जी रहे है वैसे हम भी"। इस कथन से जन जागरुकता की कमी झलकती है जो सरकार द्वारा अभियान चला कर दूर की जा सकती है।

पर्यावरणीय संरक्षण की दिशा में कुछ प्रयास

पर्यावरणीय संरक्षण कोई व्यक्तिगत समस्या नहीं है बल्कि यह एक वैश्विक समस्या है। विश्व के कई वैज्ञानिकों और पर्यावरणविदों ने आगाह किया है कि यदि पर्यावरण संरक्षण के लिए कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया गया तो आने वाले दिनों में तस्वीर भयानक होगी। अगर हम इस बात पर ध्यान नहीं देते तो यह "तात्कालिक विकास के लिए दूरगामी मौत की अनदेखी" होगा। हमें यह निश्चित कर लेना चाहिए कि अंधाधुंध विकास हमारी प्राथमिकता है या पर्यावरणीय सुरक्षा। पर्यावरणीय संरक्षण की दिशा में सबसे पहला कदम 1972 में स्टाकहोम सम्मेलन के तहत उठाया गया। इस सम्मेलन के बाद भारत में "प्रोजेक्ट टाइगर" चलाने का निर्णय लिया गया और वायु प्रदूषण से सम्बन्धित कानून बनाये गये। इस सम्मेलन में यूएनईपी का गठन किया गया जिसका उद्देश्य विकासशील देशों को पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक सुविधा और सलाह देना था। 5 जून को पर्यावरण दिवस मनाने की घोषणा इसी सम्मेलन में की गई।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से रियो–डि–जेनेरियो सम्मेलन (1992) आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में एजेंडा–21 नामक कार्यक्रम निर्धारित किया गया। यह चार भागों में था।

- विकासशील देशों से सम्बन्धित समस्या, गरीबी निवारण और जनसंख्या नियंत्रण को आवश्यक माना गया।
- सबको खाद्य, स्वच्छ जल व सामाजिक सुरक्षा की उपलब्धता।
- पूंजी स्थानांतरण को उदार बनाने पर बल।
- जैव विविधता का सर्वेक्षण।

इस सम्मेलन में अन्य चार महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये– तापमान नियंत्रण, वनीय संरक्षण, जैव विविधता, टिकाऊ विकास आदि। तापमान नियंत्रण के सम्बन्ध में दिसम्बर 1997 में क्योटो में हुए पृथ्वी 5 सम्मेलन में महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये कि यूरोप के प्रत्येक देश को 8 प्रतिशत, अमेरिका को 7 प्रतिशत तथा जापान को 6 प्रतिशत ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन कम करने की बात कही गयी। साथ ही यह भी निश्चित किया गया कि वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों का स्तर किसी भी स्थिति में 1990 के दशक से ऊपर नहीं जाना चाहिए। इसे प्राप्ति हेतु वर्ष 2012 निर्धारित है। 16 फरवरी 2005 से क्योटो लागू हो गया है। इसी दिशा में एक मुख्य प्रयास जोहान्सबर्ग सम्मेलन (2002) भी है। इसे पृथ्वी–10 सम्मेलन कहा जाता है। क्योंकि रियो के एजेंडा– 21 के कार्यान्वयन की यह 10 वर्षीय (1992–2002) समीक्षा थी।

औद्योगिक सभ्यता ने हमें असंख्य भौतिक लाभ पहुंचाए हैं तथा सुख सुविधाएं दी हैं किन्तु इन सबके लिए हमें पर्यावरण की भारी कीमत चुकानी पड़ी है। प्राकृतिक वातावरण की जीवन समर्थक प्रणालियों की सीमाएं हैं, जिनके बाहर जाने पर वे ठीक से काम करना बंद कर देती हैं और विफल तक हो जाती हैं। इसलिए पहले से ही संकट का सामना कर रहे विश्व पर्यावरण में हम पहले की तरह नहीं चल सकते क्योंकि अगर हम ऐसे ही चलते रहे तो भावी पीढ़ियों को एक प्रदूषित और शायद असमानताओं से युक्त एक बर्बर विश्व विरासत में मिले, जो सभ्यता विहीन विज्ञान और मानवता विहीन समाज से निर्मित हो। अतः यदि समय रहते हमने इस समस्या का निराकरण न किया गया तो एक दिन ऐसा आयेगा कि प्रदूषण की समस्या सम्पूर्ण मानव जाति को निगल जायेगी। प्रदूषण से बचने के लिए आम आदमी भी कुछ छोटे–मोटे उपाय कर सकता है जैसे वनों तथा पेड़ों की कटाई पर रोक के साथ–साथ वृक्षारोपण, बस्ती तथा नगर के समस्त वर्जित पदार्थों के निष्कासन के लिए सुदूर स्थान पर समुचित व्यवस्था, बस्ती तथा नगर में स्वच्छता व सफाई की ओर विशेष ध्यान, पेयजल को शुद्ध बनाये रखने पर ध्यान देना, इत्यादि।

भारत सरकार ने भी प्रदूषण की समस्या से निपटने के लिए अनेक उपाय अपनाए हैं। केन्द्रीय जनस्वास्थ्य इंजीनियरी अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने जल व वायु प्रदूषण को रोकने के लिए अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये हैं, जिन पर तेजी के साथ अमल भी किया जा रहा है। कारखानों एवं खानों में प्रदूषण रोकने के उपायों पर औद्योगिक विष विज्ञान संस्थान (लखनऊ) तथा राष्ट्रीय संस्थान (अहमदाबाद) में अनुसंधान कार्य गंभीरतापूर्वक किया जा रहा है। इसके अलावा केन्द्र सरकार का राज्य सरकारों को कड़ा निर्देश है कि प्रदूषण फैलाने वाली फैक्ट्रियों में ट्रीटमेन्ट प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की स्थापना कर दी जाए।

निष्कर्ष के तौर पर यही कहा जा सकता है कि पर्यावरण से सम्बद्ध किसी समस्या को हल करने में वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों को आमतौर पर वर्षों लग जाते हैं, फिर भी समाधान आंशिक ही निकल पाता है और कभी–कभी तो किसी सिद्धान्त के विकास, उसे लागू करने और उसके इस्तेमाल में कई दशक लग जाते हैं। दूसरी ओर समाज लगातार पर्यावरण संबंधी नयी समस्यायें चिन्ताजनक ढंग से पैदा करता रहता है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि पर्यावरण संबंधी समस्याओं के बारे में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी विषयक अनुसंधान के प्रति बढ़ती जागरुकता के बावजूद उसके वांछित परिणाम सामने नहीं आ रहे हैं।

(लेखक–पर्यावरण सम्बन्धी मामलों के जानकार हैं।)
ई–मेल : mayank_129@rediffmail.com

ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव

ग्लोबल वार्मिंग के कारण हिमनद कम हो रहे हैं और इसके कारण अधिक ऊंचाई की आर्द्र भूमियों के जल स्तर में परिवर्तन हो रहा है। जिससे अंततः निचले क्षेत्र प्रभावित होते हैं। यद्यपि नेपाल और भूटान से हिमनदों के पिघलने से बाढ़ आ जाने की खबर है तथापि भारत में इस प्रकार की किसी घटना के होने का पता नहीं चला है। आर्द्र भूमि के संरक्षण के लिए सरकार ने कई कार्यक्रम शुरू किये हैं जिनमें सर्वेक्षण और सीमांकन के लिए प्रबंधन कार्य योजनाओं की तैयारी, कैचमेंट क्षेत्र उपचार, गाद निकालना, खरपतवारों की रोकथाम, मत्स्यपालन विकास, सामुदायिक सहभागिता तथा जल प्रबंधन आदि शामिल हैं। (पसूका)

लोक प्रशासन
(हिन्दी माध्यम)

By
Atul Lohiya
(A person who believes in scientific approach and hard work)

UGC-NET
QUALIFIED IN TWO SUBJECTS
(HISTORY & PUB. ADMINISTRATION)

लोक प्रशासन (हिन्दी माध्यम) में कम अंकों का भ्रम टूटा; क्योंकि हमारे छात्रों ने स्थापित किये सफलता के नये कीर्तिमान

UPSC-06 में सर्वोच्च अंक
विकास कुमार-353 (184/169)

नवीन शर्मा-332 (188/144) **UPSC-2006**
लाल बहादुर साहू-330 (177/153) **UPSC-2006**
अभिराम खरे-317 (164/153) **UPSC-2006**
रीतेश चौहान-334 (178/156) **UPSC-2005 &**
Selected in MPPSC

Abhishek Singh
Selected, UPSC-06

छत्तीसगढ़ पी.एस.सी. में 15 वीं रैंक पर हमारे संस्थान के दृष्टिहीन छात्र आशीष सिंह ठाकुर

हौसले से हार गई विकलांगता

Lokesh Lilhare Topper, UPSC-05 | Vineet Jain Topper, UPSC-05 | A.P.S. Yadav Topper, UPSC-04 | Virendra Kumar Essay+Interview (A.C.) | Arvind Kumar Topper, UPSC-03 | Tirthraj Agarwal SDM, 9th Rank, CG. | Shikha Rajput 31st Rank, CG. | Ranu Sahu (Dy. SP) 60th Rank, CG. | Prakash Chandra SDM Uttaranchal-02

MPPSC में अपार सफलता; यह शृंखला ज़ारी...

Ram M. Sahu | Aadesh Rai | Vivek K. Dubey | Sanjay K. Jain | Sanmati Kumar | Akhilesh K. Jain | Mukesh Singh | P. Agarwal | Abhiram Khare | Rajesh K. Yadav | Arvind Chouhan | Nimisha Jaiswal

आप भी प्राप्त कर सकते हैं 350+ अंक, कैसे? Winning Strategy के साथ

New Batch (Delhi): 23 Jan. & 6th Feb. '08
Admission Open from 15th January '08

New Batch (Allahabad): 19th Jan. & 2nd Feb. '08
Admission Open from 15th January '08

केवल हम कराते हैं लोक प्रशासन का सम्पूर्ण एवं समग्र अध्ययन;
* *UPSC के साथ UP, MP, Raj., Bihar, Uttaranchal, Jharkhand Chhattisgarh, Haryana, Himachal PCS की भी तैयारी;*

JOIN FOUNDATION COURSE

लोक प्रशासन
Mains के साथ-साथ
Pre. के लिए भी बेहतर विकल्प

पत्राचार पाठ्यक्रम भी उपलब्ध
(पूर्णतः संशोधित; परिमार्जित एवं परिवर्धित कम्प्यूटराइज्ड नोट्स)
MAINS - 3000/-
MAINS + PRE. - 4000/-
डाक खर्च - 200/- अतिरिक्त
Send DD/MO in favour of 'Atul Lohiya'

'अतुल लोहिया'
शिक्षक; मार्गदर्शक और मित्र भी

"PRABHA"
AN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
DOUBTLESS KNOWLEDGE, DESIRELESS SERVICE
105, VIRAT BHAWAN (MTNL BLDG.), NEAR BATRA CINEMA, MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
Phone : 27653498, 27655134, 32544250. Cell.: 9810651005 • e-mail: atulprabha@gmail.com
Branch : 305/250, COLONELGANJ, NEAR COLONELGANJ POLICE STATION, ALLAHABAD.

KH-01/08/01

उत्तराखण्ड में भूस्खलन संवेदनशीलता

डॉ. वेदप्रकाश एवं डॉ. प्रतिमा पाण्डेय

प्राकृतिक रूप से घटित वे सभी आकस्मिक घटनाएं जो प्रलयकारी रूप धारण कर मानव सहित सम्पूर्ण जैव–जगत के लिये विनाशकारी स्थिति उत्पन्न कर देती है, प्राकृतिक आपदाएं कहलाती हैं। प्राकृतिक आपदाओं का सीधा सम्बन्ध पर्यावरण से है। पर्यावरण की समस्त प्रक्रियाएं पृथ्वी की अन्तर्जात एवं बहिर्जात शक्तियों द्वारा संचालित होती हैं। यही वे शक्तियां हैं जो पर्यावरण को गतिशील रखती हैं। पर्यावरण की इस गतिशीलता का घटनाक्रम अनादिकाल से अनवरत् रूप से चल रहा है, जो कभी विकास के रूप में तो कभी विनाश के रूप में प्रकट होता है। प्रकृति अपनी आंतरिक शक्तियों के द्वारा पृथ्वी पर स्थलरूपों के निर्माण कार्यों का सम्पादन करती है। भूकम्प, ज्वालामुखी विस्फोट आदि ऐसे ही प्रक्रम है जो नवीन स्थलरूप को निर्मित करते हैं, जबकि भूस्खलन, तूफान एवं बाढ़ आदि बाह्य शक्तियों के विनाशकारी परिणाम हैं। इनके द्वारा पूर्व निर्मित स्थल रूपों का परिवर्तन कार्य सम्पन्न होता है। अतः प्रकृति की ये सभी घटनाएं एक सामान्य गतिशील प्रक्रिया के रूप में चलती रहती हैं। परन्तु मानव समाज के लिये यही घटनाएं आपदाओं के रूप में अभिशाप बन जाती हैं, क्योंकि मानव की कुछ अनुक्रियाएं प्रकृति विरोधी होती है जिससे प्रकृति प्रकोपित होकर आपदाओं के रूप में प्रकट होती हैं। मानव जनित विभिन्न पर्यावरणीय अवनयन अनुक्रियाएं इसी श्रेणी में आती हैं। ये अनुक्रियाएं प्रकृति एक सीमा तक ही सहन करती है, किन्तु जब प्रकृति की सहन क्षमता समाप्त हो जाती है तो ऐसी घटनाएं प्रकट होती हैं जो स्वभावतः अप्रत्याशित लगती हैं। वर्तमान समय में भूस्खलन, बाढ़ एवं सूखा आदि आपदाओं की आवृत्तियों में वृद्धि इसी का परिणाम है।

देश के अन्य राज्यों की अपेक्षा उत्तराखण्ड प्राकृतिक दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील राज्य है। यहां प्राकृतिक एवं मानवीय आपदाएं, भूकम्प, भूस्खलन, हिमपात, अतिवृष्टि, बादल फटना, दावाग्नि एवं सड़क दुर्घटना आदि की आवृतियां अधिक बनी रहती हैं। यद्यपि इन घटनाओं के मूल में प्रकृति की सर्वोच्च भूमिका है। किन्तु मानव की अनुक्रियाएं आर्थिक एवं सामाजिक विकास की अनियोजित नीति और पर्यावरण अवनयन भी कम उत्तरदायी नहीं हैं। इन आपदाओं के नियन्त्रण हेतु भूवैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों , नियोजकों, प्रशासनिक अधिकारियों और भूगोलविदों के समक्ष गंभीर चुनौती उत्पन्न कर दी है। आपदाओं की गहनता के कारण हिमालय का यह क्षेत्र मानव जीवन के लिये असुरक्षित होता जा रहा है। इसलिये अब यह विचार भी महत्वपूर्ण माना जाने लगा है कि प्राकृतिक आपदाएं उत्तराखण्ड के नियोजन कार्यों एवं प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन में प्रमुख बाधा है अतः इनके न्यूनीकरण पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

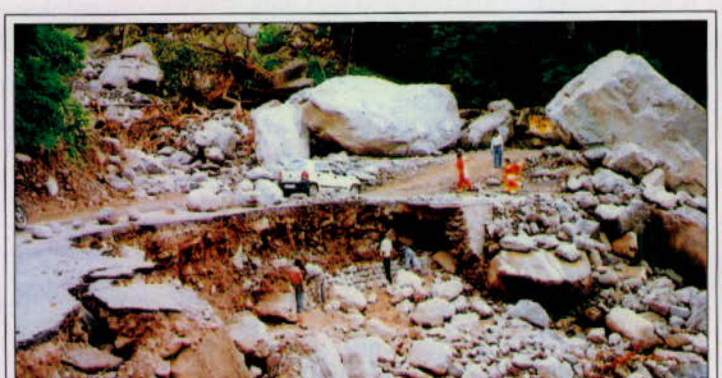

भूस्खलन से अवरुद्ध सड़क मार्ग

अध्ययन क्षेत्र

उत्तराखण्ड उत्तर भारत के हिमालय पर्वतीय क्षेत्र के पश्चिमी भाग के लगभग मध्य में अवस्थित है। इसका भौगोलिक विस्तार 28° 46′ से 31°25 उत्तरी अक्षांश एवं 77° 35′ पूर्वी देशान्तर से 81°1′ पूर्वी देशान्तरों के मध्यस्थ पाया जाता है। पर्वतीय राज्यों में क्षेत्रफल की दृष्टि से इसका चौथा एवं जनसंख्या की दृष्टि से जम्मू कश्मीर के बाद द्वितीय स्थान है। राष्ट्रीय स्तर पर उत्तराखण्ड का क्षेत्रफल भारत का 1.62 प्रतिशत है, जिसमें देश की 0.82 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। संदर्भित अध्ययन क्षेत्र, कोटद्वार दुगड्डा सड़क मार्ग, इस प्रदेश के दक्षिण में स्थित पौड़ी जनपद की कोटद्वार तहसील के दुगडड्डा विकास खण्ड में स्थित हैं। यह मेरठ – पौड़ी राष्ट्रीय सड़क मार्ग पर लगभग 16 किलोमीटर की लम्बाई वाला भूस्खलन की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील पर्वतीय क्षेत्र है। इस क्षेत्र में प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु में भूस्खलन से जन–धन की भारी हानि होती रहती है।

भूस्खलनः एक प्राकृतिक आपदा

पर्वतीय ढालों पर कोई भाग जब जल तत्व भार की अधिकता एवं आधार चट्टानों के कटाव के कारण अपनी गुरुत्वीय स्थिति से असन्तुलित

होकर अचानक तीव्रता के साथ सम्पूर्ण अथवा विच्छेदित खण्डों में गिरने लगता है, तो वह घटना भूस्खलन कहलाती है। भूस्खलन प्रायः तीव्र गति से आकस्मिक उत्पन्न होने वाली प्राकृतिक आपदा है। भौतिक क्षति और जन–हानि इसके दो प्रमुख दुष्प्रभाव हैं। भूस्खलन अपने मार्ग में आने वाले प्रत्येक पदार्थ, मानव बस्ती, खेत–खलिहान, सड़क मार्ग आदि सभी को नष्ट कर देता है। भूस्खलन से नदी मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं, जिससे नदी के ऊपरी भाग में बाढ़ आ जाती है, कभी–कभी किसी क्षेत्र में बड़ी झील बन जाती है जिसके टूटने पर त्वरित बाढ़ से भारी तबाही होती है। अतः भूस्खलन मानव समुदाय पर कहर बरसाने वाली एक गम्भीर प्राकृतिक आपदा है। भारत में इस आपदा का रौद्र रूप हिमालय पर्वतीय प्रदेश एवं पश्चिमी घाट के कोंकण तट पर अधिक देखा जाता है। वस्तुतः हिमालय प्रदेश युवा वलित पर्वतों से बना है, जो अत्यंत अस्थिर एवं संवेदनशील भू–भाग है। यहां की धरातलीय संरचना विवर्तनिक हलचलों से प्रभावित होती रहती है इसलिये भूस्खलन की घटनाएं अधिक होती रहती हैं।

सामान्यतः भूस्खलन का मुख्य कारण पर्वतीय चट्टानों का कमजोर होना है। चट्टानों को कमजोर करने में विवर्तनिक घटनाएं, भ्रंश, अपक्षय एवं अपरदन की मुख्य भूमिका होती है। इन कमजोर चट्टानों में प्रवेशीय जल चट्टानों को बांध कर रखने वाली मिट्टी को ढीला कर देता है। यही ढीली हुई मिट्टी ढाल की ओर भारी दवाब डालती है। दबाव के कारण चट्टानें ऊपर के भारी और गीले मलबे का भार नहीं संभाल पाती हैं, इसलिए वह नीचे की ओर खिसक जाती हैं और भूस्खलन हो जाता है। पहाड़ी ढालों और चट्टानों को कमजोर करने में कई कारण उत्तरदायी होते हैं – (1) पूर्व में आया भूकम्प, (2) पृथ्वी की आन्तरिक हलचलों से चट्टानों में उत्पन्न भ्रंश, (3) अत्यधिक वर्षा के कारण तीव्र भू–क्षरण, (4) चट्टानों के भीतर रासायनिक क्रियाओं का होना, (5) पहाड़ी ढालों का वनस्पति विहीन होना, (6) पहाड़ों पर बड़े बांध और भारी इमारतों की संख्या में वृद्धि आदि।

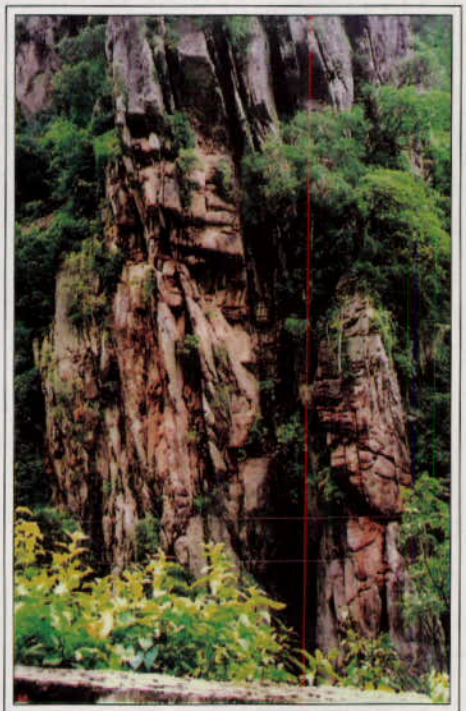

भूस्खलन संवेदनशीलता के लिए उत्तरदायी चट्टानों की लम्बत दिशा

वास्तव में, भूस्खलन को प्रेरित करने में मुख्य भूमिका ढाल के ऊपर स्थित 'बोझ' तथा जल दवाब की उपस्थिति है। पर्वतीय ढालों पर चट्टानों के बीच में भरे जल के कारण चट्टानों का आधार अस्थिर होता रहता है इसलिये चट्टानें टूटकर ढालों के सहारे नीचे खिसकती रहती हैं जो भूस्खलन की आवृति में वृद्धि करती हैं। भूगर्भवेत्ता डॉ. ए. के. बियानी के अनुसार "विभिन्न स्थलों के लिये भूस्खलन के विभिन्न कारण हो सकते हैं"। वरूणावत पर्वत (उत्तरकाशी) में हो रहा भूस्खलन पूर्व काल में भूस्खलित मलबे का परिणाम है। इसे हम भूस्खलन का पुनः सक्रिय होना कह सकते हैं। इस स्थिति में मलबा काफी कमजोर होता है और इसे पुनः भूस्खलित होने से रोका नहीं जा सकता है। यही स्थिति लामबगड़ (बद्रीनाथ) के भूस्खलन की है। यहां एक अतिरिक्त कारण भी है कि लामबगड़ हिमालय के सर्वाधिक महत्वपूर्ण भ्रंश वाले क्षेत्र में स्थित है। मेन सेन्ट्रल थ्रस्ट इसके पास से ही गुजरता है। यमुनोत्री भूस्खलन के लिये यहां हो रहा निर्माण कार्य उत्तरदायी है क्योंकि इससे इस भाग में स्थित तप्त जल स्रोतों से भाप निकलने वाले मार्ग कई स्थानों पर बन्द हो गये हैं जो भूस्खलन का प्रमुख कारण हैं। जी.एस.आई के वैज्ञानिक हेमचन्द्र खंडूरी का मत है कि "उत्तराखण्ड में अत्यधिक वर्षा भूस्खलन आपदा के लिये उत्तरदायी है"। जल के संपर्क में आकर सतृंप्त होते ही पहाड़ों पर एकत्र मलबे के भार में वृद्धि हो जाती है और वह धीरे–धीरे नीचे की ओर खिसकने लगता है। इस स्थिति को 'सुपर सेच्युरेशन' कहा जाता है जिसमें पर्वतीय चट्टानों की दरारों में पानी रिसाव के कारण भूस्खलन होने लगता है। प्रसिद्ध भूवैज्ञानिक वाडिया के अनुसार "हिमालय क्षेत्र में विस्तृत सड़कों के जाल ने अत्यधिक अवसाद उत्पन्न किया है। यही अवसाद ढाल के सहारे नीचे गिरकर वनस्पतियों, खेत खलियानों, मानव बस्तियों, नदी–नालों और सड़क मार्गो पर भूस्खलन के रूप में तबाही उत्पन्न करता है जो भूस्खलन के अतिरिक्त वन विनाश एवं बाढ़ का भी प्रमुख कारण है और आने वाले समय में अतिरिक्त भूस्खलन की सम्भावनाओं में भी वृद्धि करता है"।

भूस्खलन संवेदनशीलता के कारण

भूवैज्ञानिक संरचनाः उत्तराखण्ड की भूवैज्ञानिक संरचना को संपूर्ण हिमालय से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। यहां

अति प्राचीन शैलों से लेकर अति नूतन काल तक की विभिन्न वर्गों की शैल क्रम उपलब्ध हैं। शिवालिक हिमालय में मुख्यतः टरशियरी काल के मायोसीन एवं प्लीस्टोसीन आयु के निक्षेप, मृत्तिका, संगुटिकाश्म तथा बालुकाश्म शैल प्राप्त होती हैं। निम्न शिवालिक की शैल मुख्य रूप से भूरे बलुआ पत्थर की है जिनके बीच–बीच में क्रमिक रूप में लाल एवं भूरे रंग की क्ले पाई जाती है। संदर्भित क्षेत्र में इसी प्रकृति की चट्टानों के कारण भूस्खलन की संवेदनशीलता अधिक है क्योंकि जैसे ही वर्षा आरम्भ होती है चीका युक्त भूरे बलुआ पत्थर की ये चट्टानें अधिक जल भार युक्त होने पर तीव्र खड़े ढालों पर असंतुलित होकर नीचे गिरने लगती हैं। फलस्वरूप कोटद्वार दुगड्डा सड़क मार्ग भूस्खलन आपदा से प्रभावित होने लगता है। जहां पर इन चट्टानों की दिशा लम्बवत है और वनस्पति आवरण भी न्यूनतम है वहां पर भारी मात्रा में मलबा आकर मार्गों को अवरुद्ध कर देता है। जैसे जैसे वर्षा की मात्रा में वृद्धि होती रहती है भूस्खलन द्वारा मलबे की मात्रा भी तेजी से बढ़ती जाती है। उत्तराखण्ड के अन्य भूस्खलन प्रभावित क्षेत्र भी चट्टानों की इस प्रकार की प्रवृति से मुक्त नहीं हैं। अतः मध्यवर्ती शिवालिक की संरचना मुख्यतः बलुआ पत्थर से हुई है जिसके बीच–बीच में क्रमिक रूप से चट्टानों का मिश्रण है। शिवालिक में बलुआ पत्थर तथा सिल्ट स्टोन के साथ–साथ कांगलोमरेट का मिश्रण मिलता है। शिवालिक संघ की चट्टानों का यह क्रम मुख्य सीमान्त है। भ्रशंन के द्वारा अलग होता। इसके उत्तर में मुख्य केन्द्रय भ्रशंन तक निम्न हिमालय में जहां प्रोटीरोजोईक, कैम्ब्रियन, परमिनन, क्रिटेशियस तथा ईसोसीन युग की क्रिस्टेलाइन चट्टानों की प्रधानता है, वहां भी भूस्खलन आपदा की आवृत्ति बनी रहती है। आई.आई.टी रूड़की के भूवैज्ञानिक प्रो. ए. के. पचौरी का कथन है कि पहाड़ सामान्यतः लाइमस्टोन, बलुआ पत्थर ग्रेनाइट, क्वार्टजाइट, फिलाइट तथा सिस्ट के बने हैं। सिस्ट तथा फिलाइट चट्टानें बहुत कमजोर होती हैं। जब इन चट्टानों से आधार कमजोर हो जाता है तो वह जल्दी जल्दी गिरती रहती हैं।

उच्चावच एवं ढालः उत्तराखण्ड में उच्चावच विषमताएं बहुत अधिक हैं जो 200° मीटर से 7000 मीटर के मध्य पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त तीव्र पर्वतीय ढाल, पर्वत शिखर एवं गहरी घाटियों से अत्यधिक तीव्र अपरदन के कारण भूस्खलन के लिये अनुकूल दशाएं उत्पन्न होती रहती हैं। यही कारण है की उत्तराखण्ड के अधिकांश भूस्खलन प्रभावित क्षेत्र नदी घाटियों में तीव्र ढाल एवं उच्च पर्वतीय श्रेणियों की जड़ों में स्थित हैं। यह स्थिति संदर्भित क्षेत्र कोटद्वार दुगड्डा सड़क मार्ग के अतिरिक्त चमोली, रूद्रप्रयाग, उत्तरकाशी, टिहरी, पिथौरागढ़, बागेश्वर, अल्मोड़ा एवं नैनीताल जनपदों में भी मिलती है। इन क्षेत्रों में जहां धरातीय ढाल 600 मीटर प्रति किमी है तथा जटिलतायुक्त भूगर्भिक चट्टानें स्थित हैं वहां भूस्खलन संवेदनशीलता अधिक मिलती है। ऐसे क्षेत्र भी जहां ढाल प्रवणता 300 से 150 मीटर है एवं कोमल और कठोर चट्टानें मिश्रित रूप से विद्यमान हैं वहां पर भी भूस्खलन संवेदनशीलता अधिक पाई जाती है।

अपवाह तंत्रः राज्य का विषम अपवाह तंत्र भी भूस्खलन के लिये कम उत्तरदायी नहीं है। यहां की नदियां अभी यौवन अवस्था में हैं जो ढालयुक्त धरातल पर तीव्रगति से प्रवाहित होते हुए लम्बवत अपरदन करती हैं। इन नदियों के मार्ग में जहां उर्ध्वाधर दिशा युक्त चट्टानों में लम्बी दिशा में अपक्षय एवं अपरदन की प्रवृति के कारण भूस्खलन के लिये अनुकूल दशाएं उत्पन्न होती रहती हैं, यदि ये सिस्ट एवं फिलाइट चट्टानें हैं तो और भी शीघ्रता से कमजोर होकर टूटती रहती हैं। वर्षा ऋतु में यही चट्टानें जलभार की अधिकता के कारण भूस्खलन आपदा में भी वृद्धि करती हैं।

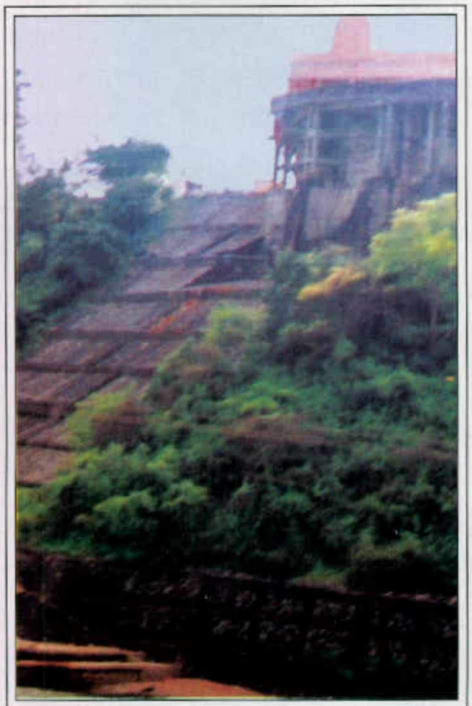

भूस्खलन न्यूनीकरण हेतु उचित प्रतिरोधक दीवार (सिद्धबली मन्दिर कोटद्वार)

भ्रंशः उत्तराखण्ड में भूस्खलन एवं भूकम्प आपदा के लिये यहां स्थित मुख्य केन्द्रीय भ्रंश तथा मुख्य सीमान्त भ्रंश विशेष रूप से उत्तरदायी है। यह भ्रंश रेखाएं गढ़वाल एवं कुमांऊ के उन क्षेत्रों से गुजरती हैं जहां उच्चावच 2000 से 5000 मीटर के मध्य है। यह भाग उच्च ग्लेशियर एवं निम्न हिमालय के मध्य मिलता है। मेन ब्राउन्ड्री फाल्ट एक मुख्य फन्डामेन्टल फाल्ट है जो कि शिवालिक श्रेणियों की उत्तरी सीमा को दर्शाता है। यह भ्रंश (फाल्ट) मध्यम गति से उत्तर की ओर झुका है तथा पूरे हिमालय से होकर गुजरता है। दुगड्डा–कोटद्वार के मध्य क्षेत्र में इस भ्रंश की नति 80° तक उत्तर दिशा में है। इस बात की पुष्टि यहां पर उपस्थित

शिवालिक श्रेणियों की चट्टानों की नति से भी होती है। अतः यह भ्रंश भी इस क्षेत्र में हो रहे लगातार भूस्खलन के लिये उत्तरदायी है।

मानवीय अनुक्रियाएं: अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत भूस्खलन के लिये उल्लिखित संवेदनशीलता के लिए उत्तरदायी प्राकृतिक कारकों के अतिरिक्त विभिन्न मानवीय अनुक्रियाएं भी महत्वपूर्ण कारकों के रूप में जिम्मेवार हैं। यथा अनियन्त्रित उत्खनन, अनियोजित सड़कों का निर्माण, अत्यधिक मात्रा में वनों का विनाश, अनियन्त्रित पशुचारण, आवास एवं भवन निर्माण हेतु दोष पूर्ण स्थानों का चयन तथा अनियोजित भूमि उपयोग ने भी

वन्य तथा खतरे में पड़ी प्रजातियों का संरक्षण-काज़ीरंगा

भारत सरकार ने वन्य पशुओं तथा वनस्पतियों के संरक्षण और सुरक्षा के लिए क्रमबद्ध प्रयास किये हैं। भारत वन्य पशुओं तथा वनस्पतियों की विभिन्न किस्मों से संपन्न है और यह विशाल जैव विविधता से संपन्न 12 देशों में से एक है। इस जैव विविधता की रक्षा के लिए वन्य जीव सुरक्षा के व्यापक कानूनों के अलावा सरकार ने एक व्यापक राष्ट्रीय वन्यजीवन कार्ययोजना तैयार की है। वन्यजीवन के बेहतर प्रबंधन और सुरक्षा के लिए 606 संरक्षित क्षेत्रों वाले एक नेटवर्क का निर्माण किया जा चुका है। इसमें 96 राष्ट्रीय पार्क तथा 510 वन्यजीव अभ्यारण्य शामिल हैं। इनका कुल क्षेत्र लगभग 1559 लाख हेक्टेयर है। इसके अलावा बाघ परियोजना को संशोधित किया गया है और इसको अधिक शक्तियां तथा आज्ञापत्र देकर राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण में तब्दील कर दिया गया है। काज़ीरंगा राष्ट्रीय पार्क पौराणिक वन्यजीव अभ्यारण्य है और यह लगभग समाप्ति के कगार पर खड़े एक सींग वाले एशियाटिक गैण्डों का आवास स्थल है।

काज़ीरंगा राष्ट्रीय पार्क विश्व विरासत स्थलों में से एक है। इसकी स्थापना की जानकारी हमें 19वीं शताब्दी के आरंभ में मिलती है जब कलकत्ता के अज़ायबघर के अधिकारियों ने असम घाटी के मुख्य आयुक्त से कोलकाता के अज़ायबघर को एक गैण्डा उपलब्ध कराने का अनुरोध किया था। जब वन्य अधिकारियों ने लगभग समाप्तप्राय और विरल प्रजातियों की संख्या में तेजी से आई गिरावट के बारे में आयुक्त को सूचित किया तो आयुक्त ने इस पर गंभीरता से विचार किया और अंत में लगभग 57 हजार एकड़ भूमि क्षेत्र सहित काज़ीरंगा को संरक्षित वन घोषित कर दिया।

इसके बाद समय ने पीछे मुड़कर नहीं देखा और एक के बाद एक होने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पार्क को संरक्षित वन, फिर वन्यजीव अभ्यारण्य और अंत में राष्ट्रीय पार्क घोषित कर दिया गया।

यह पार्क सफलता की कहानी का अद्‌भुत नमूना है क्योंकि यह पार्क कुछेक गैंण्डों के साथ शुरू हुआ था और आज यह लगभग 1700 प्रजातियों से परिपूर्ण है। यह कोई औसत उपलब्धि नहीं है। यह पार्क गुवाहाटी से 217 किलोमीटर लंबे सड़क मार्ग की दूरी पर स्थित है। इसका कुल क्षेत्र 430 वर्ग किलोमीटर से अधिक है और यह चार रेंजों तक फैला हुआ है। वनस्पतियों के वास्ते इतने ही क्षेत्र को इसके साथ जोड़ दिया गया है। जोरहाट और गुवाहाटी हवाई अड्डे यहां के निकटतम हवाई अड्डे हैं।

पर्यटकों के आकर्षण का स्थान होने के अलावा यह हाथी, हॉग बीयर, चीता, जंगली सुअर, बत्तखों, घोड़े, (गीज), सारसों, सरीसृपों, प्रत्येक मौसम में यहां आने वाले हज़ारों अप्रवासी पक्षियों तथा रेड डाटा बुक में शामिल विरल एवं विलुप्त होने के कगार पर खड़ी प्रजातियों का आवास स्थल है।

यहां बार-बार आने वाली विनाशकारी बाढ़ एक शताब्दी पुराने इस गैण्डा अभ्यारण्य के लिए एक विशाल समस्या है। प्रत्येक वर्ष बाढ़ के दौरान पार्क के समर्पित कर्मचारी अन्य स्वयंसेवकों के साथ मिलकर इस पार्क से गुजरने वाले राष्ट्रीय राजमार्ग पर उन विशेष स्थानों पर निगरानी रखते हैं जहां से बाढ़ के दौरान वन्यपशु सुरक्षित ऊंचे स्थानों की तलाश में इस सड़क को पार करते हैं।

तथाकथित औषधीय गुण वाले सींग के लिए होने वाले गैण्डे के शिकार में कुछ कमी आई है। कर्मचारियों की कमी और टेंट इत्यादि उपकरणों की कमी कुछ ऐसी समस्याएं हैं जो पार्क में स्टाफ के दुखों को और बढ़ा देती है। फिर भी इस अभ्यारण्य में दिन प्रति दिन काम करने के लिए कर्मचारियों का जो समर्पण भाव और जोश दिखाई देता है उस पर विश्वास करना ही पड़ेगा।

जैसे कि असम गैण्डों का पर्यायवाची है और इस पार्क को संपूर्ण विश्व में जाना जाता है। पशुओं के आवासों और पर्यावरण की सुरक्षा के लिए अनेक उपाय और कदम उठाये गये हैं। वन्य जीवों की सुरक्षा और संरक्षण को भी प्राथमिकता दी गई है। वन्य पशु अपने रहने के स्थान से बाहर आकर रास्ता न भटक जाए इसके लिए भी सुरक्षा उपाय किये गये हैं। (पसूका)

उत्तराखण्ड में भूस्खलन संवेदनशीलता में वृद्धि की है। सड़क एवं भवन निर्माण हेतु बड़ी संख्या में पहाड़ों का कटाव किये जाने से आधारीय चट्टान कमजोर हुई हैं और फिर सड़क निर्माण के बाद उनको यथावत छोड़ दिया गया है। अर्थात पर्वतीय ढालों को सुरक्षा प्रदान करने के लिये जो पुस्ते या पत्थरों की दीवार बनायी जानी चाहिये थी वह नहीं बनायी गयी है। गत वर्षों में राज्य में कई सड़क मार्गों को राष्ट्रीय राज्य मार्ग का दर्जा दिया गया और कई नये सड़क मार्ग भी बनाये गये थे। उसी समय से सड़कों को चौड़ा करने के लिये सड़क मार्गों के किनारे पर्वतों को काटने का कार्य बड़ी मात्रा में किया गया तब से ऋषिकेश बद्रीनाथ मार्ग, तथा कोटद्वार–पौड़ी मार्ग भूस्खलन से सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र बन गया है। यही नहीं उत्तराखण्ड में भवन निर्माण कार्यों में भी वृद्धि हुई है, जिसमें राज्य की प्राकृतिक संवेदनशीलता को पूरी तरह नकार दिया गया है और अनियोजित ढ़ंग से जहां कहीं भी अवसर मिला है भवन निर्माण कार्यों को पूरा किया गया है। इसी प्रकार अनियोजित भूमि उपयोग उपयुक्त स्थान के चुनाव पर ध्यान दिये बगैर ही वनभूमि का ह्रास किया गया जिससे भूस्खलन संवेदनशीलता में वृद्धि हुई है। राज्य में जलविद्युत उत्पादन हेतु बनाये गये एवं बनाये जा रहे बांधों के कारण भी इस प्रकार की गतिविधियों में वृद्धि हुई है जो भूस्खलन संवेदनशीलता को बढ़ाती है। अतएव उत्तराखण्ड की पूर्व संवेदनशीलता प्राकृतिक पृष्ठभूमि को मानवीय अनुक्रियाओं ने और अधिक संवेदनशीलता प्रदान की है।

भूस्खलन आपदा न्यूनीकरण

सुनियोजित विकास, निर्माण की उन्नत तकनीकों के प्रयोग तथा समय–समय पर स्थलों के निरीक्षण और उनका उपचार एवं जलनिकासी सुविधाओं को व्यवस्थित करके भूस्खलन की सम्भावनाओं को न्यूनतम किया जा सकता है। इससे बचाव के निम्नलिखित उपाय महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैः सम्भावित क्षेत्रों का मानचित्रण एवं पहचानः भूस्खलन सम्भावित एवं प्रभावित क्षेत्र की पहचान करके उन्हें मानचित्रित किया जाना चाहिए। इस मानचित्र का जनसामान्य में प्रचार–प्रसार भी आवश्यक है जिससे प्रभावित वर्ग सतर्क रहे। सुनियोजित भूमि उपयोग एवं स्थलों का निरीक्षणः भूस्खलन आपदा को न्यूनतम करने के लिये भूमि उपयोग और समय–समय पर उपयोग में लाए जा रहे भूमि स्थलों का निरीक्षण अत्यंत आवश्यक है। तकनीकी इंजीनियरों तथा भूवैज्ञानिकों द्वारा सुझाए अनुसार अपनाए गए भूमि उपयोग तथा स्थल जांच से ढलान को स्थिर बनाने वाली विधियां अपनाकर भूस्खलन से होने वाली 95 प्रतिशत से अधिक क्षति को कम किया जा सकता है। प्रतिरोधक दीवारों का निर्माणः भूस्खलन रोकने एवं क्षति को न्यूनतम करने के लिये भूस्खलन प्रभावित क्षेत्रों में प्रतिरोधक दीवारों का निर्माण उपयुक्त युक्ति है। इस प्रकार की दीवारें सड़कों के किनारे तीव्र ढाल को रोकने के लिये बनाई जाती हैं। उत्तरकाशी में वरूणावत पर्वत के भूस्खलन उपचार हेतु स्थान–स्थान पर इसी प्रकार की प्रतिरोधक दीवारें बनाई गई हैं। ढलानों को स्थिर करनाः भूस्खलनों की क्षति को न्यूनतम करने के लिये पर्वतीय ढलानों को स्थिर करना लाभदायक रहता है। ढलानों को घासपात उगाकर, पौधारोपण करके एवं वृक्ष लगाकर स्थिर एवं मजबूत किया जा सकता है। भवनों के निकट अवरोधकों का निर्माणः खड़ी व तीव्र ढाल के तलों पर बने भवनों के निकट अवरोधकों का निर्माण करना चाहिए जो छोटे–छोटे भूस्खलन को रोकने में समर्थ हों।

उपरोक्त भूस्खलन न्यूनीकरण प्रबन्धन कार्यों के अतिरिक्त छोटे–छोटे भूस्खलनों को न्यूनतम करने के लिये निम्नलिखित सुझाव भी उपयोगी हो सकते हैः पक्के रास्तों, वनस्पतिरहित सतहों आदि में बहते हुए पानी की निकासी जल–ग्रहण बेसिन की ओर करनी चाहिए जिससे भूस्खलन हेतु पानी भूमि में प्रवेश न कर सके। यदि सतही पानी भवनों या मकानों से होकर बहता है और वहां इसके प्रवाहित होने के स्थल उपलब्ध हैं तो एक हल्का–सा ढाल वाला कम गहरा गड्ढा बनाकर पानी को उस गड्ढे द्वारा हरे–भरे क्षेत्र, गली की पटरी, सड़क, जल–निकास नाली या जल–संग्रहण क्षेत्र की ओर पहुंचाने का प्रयास करना चाहिए। निकास के लिये सतह पर एकत्रित जल को ढलानों, ढीली मिट्टी और वनस्पति रहित सतहों की ओर जाने से रोकें। इससे भूस्खलन की सम्भावनाओं में वृद्धि होती है। भूस्खलन को नियन्त्रित करने का सबसे सरल व सस्ता उपाय वनस्पति आवरण की सुरक्षा करना या वनस्पति को अधिकाधिक विकसित करना है। वनस्पति आवरण मिट्टी की ऊपरी सतह को निचली सतह के साथ बांध कर रखता है और स्थलीय जल के अनावश्यक प्रवाह एवं मृदा अपरदन को न्यूनतम करता है। अतः भूस्खलन को नियन्त्रित करने के लिये सतत अभियान चलाकर वृक्षारोपण किया जाना चाहिए तथा संरक्षित वन–क्षेत्र का विकास एवं संरक्षण होना चाहिए। खनिज उत्खनन एवं सड़कों के निर्माण हेतु पहाड़ों पर अनावश्यक खुदाई पर रोक होनी चाहिए। अत्यावश्यक सड़क निर्माण के बाद सड़क के किनारे पहाड़ी ढालों की ओर प्रतिरोधक दीवार अवश्य बनाई जानी चाहिए।

(लेखक पीजी कालेज पौड़ी गढवाल में भूगोल के प्रवक्ता हैं।)

सामाजिक वानिकी और पंचायत

डॉ. निर्मल कुमार आनंद

वन सम्पदा देश की ऐसी निधि है जो पुनरोपयोगी संसाधन उपलब्ध कराकर देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। हमारे देश में कुल भौगोलिक क्षेत्र के 20.64 प्रतिशत भू–भाग पर वन हैं, जिसमें 12 प्रतिशत घने वन, 7.96 प्रतिशत खुले वन 0.15 प्रतिशत मैनग्रोव वन तथा मात्र 0.53 प्रतिशत मानव निर्मित वन हैं। भारत के लगभग 413 जिलों में से 105 में ही 33 प्रतिशत वन क्षेत्र हैं जबकि 52 जिलों में 25 प्रतिशत तथा शेष 217 जिलों में 0.1 प्रतिशत से लेकर 19 प्रतिशत तक वनाच्छादित क्षेत्र हैं। उपग्रह से प्राप्त चित्रों के विश्लेषण से पता चला है कि भारत में मात्र 10 प्रतिशत ही अच्छे वन हैं। इस परिस्थिति में 33 प्रतिशत वनों की आवश्यकता स्वरूप मानव निर्मित वनों का विस्तार करना ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। वस्तुतः औद्योगिक एवं सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार के बावजूद आम नागरिकों की समस्याएं कम नहीं हुई हैं। ग्रामीणों की कृषि संबंधी विपदाओं की सूची लम्बी है। कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ की समस्याएं पहले से अधिक विकराल रूप धारण करने लगी है। मौसम चक्र में परिवर्तन के कारण बढ़ती गर्मी, कम बरसात, अलनीनों प्रभाव, प्रदूषित पर्यावरण, धरती के तापमान में वृद्धि, अम्लीय वर्षा, ओजोन परत में बढ़ता छिद्र तथा बिजली–पानी के संकट ने देश के सामने विकट चुनौतियां उत्पन्न की है। प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ गया है। इस परिस्थिति में इन समस्त समस्याओं के समाधान स्वरूप सामाजिक वानिकी एक महत्वपूर्ण विकल्प साबित हो सकती है, जिसे प्रोत्साहित कर सरकार स्थानीय स्तर से पारिस्थितिकीय संतुलन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है।

गांवों में ईंधन के लिए वनों से लकड़ी काटने पर प्रतिबंध हो

सामाजिक वानिकी समाज, पंचायत एवं वन विभाग का ऐसा समन्वय है, जो रक्षित वनों पर समाज के भार को कम करता है तथा मानव शक्ति को वनोत्पादन की ओर प्रोत्साहित करता है। इस परिप्रेक्ष्य में अब जबकि समाज के सर्वांगीण विकास की महती जिम्मेदारी पंचायती राज व्यवस्था के मजबूत कंधों पर दे दी गयी है, पंचायत अपने क्षेत्र के लोगों को जागरूक कर सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहित कर सकती है।

भारत में सामाजिक वानिकी को सर्वप्रथम छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान नए बीस सूत्रीय कार्यक्रम के सूत्र संख्या –12 के तहत अपनाया गया। इसके अंतर्गत तीन प्रमुख कार्यक्रम हैं– बंजर भूमि में मिश्रित बागान लगाना, विनष्ट वनों में पुनः वनारोपण करना तथा सुरक्षा पेटियां बनाना। सामाजिक वानिकी का प्रमुख उद्देश्य है कि नवीकरण द्वारा ईंधन प्राप्त कर गोबर का प्रयोग ईंधन के बजाय खाद के रूप में करना, साथ ही रक्षित वनों में पशुचारण न हो इसके लिए वैसी वनस्पतियों का विकास करना जिनका पशुओं के चारा के रूप में उपयोग किया जा सके। भारत में इमारती लकड़ियों को प्राप्त करने के उद्देश्य से वनों की अंधाधुंध कटाई की गई है, जिससे पर्यावरण पर खतरा उत्पन्न हुआ है। अतः सामाजिक वानिकी के द्वारा ऐसे पौधों का विकास करना है जिससे कीमती एवं उपयोगी लकड़ियां प्राप्त की जाएं तथा पारिस्थितिकी तंत्र का जैव विविधता द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाए। देश के खादय संसाधनों में वृद्धि हो सके इसके लिए भूमि संरक्षण तथा खेतों की उर्वरता को बढ़ाकर भोज्य सामग्री उपलब्ध करना भी इसका उद्देश्य है। चूंकि हरियाली का जीवन से गहरा संबंध है इसलिए सार्वजनिक स्थलों पर सजावटी एवं छायादार वृक्ष को विकसित करना भी इसके प्रमुख उद्देश्यों में शामिल है। स्पष्ट है कि सामाजिक वानिकी ऐसी योजना है जिससे चौतरफा पर्यावरण की सुरक्षा हो सकती है। एक ओर तो इससे ईंधन, चारा एवं उपयोगी लकड़ियां प्राप्त होंगी दूसरी ओर बढ़ती जनसंख्या का पर्यावरण पर भार भी कम हो सकेगा।

वस्तुतः प्रत्येक वर्ष लगभग 23.5 करोड़ घन मीटर ईंधन की लकड़ी वनों से काटी जाती है जबकि वनों की स्थाई क्षमता

करीब 4.8 करोड़ घनमीटर लकड़ी देने की है। औद्योगिक लकड़ी की वार्षिक मांग करीब 2.6 करोड़ घनमीटर है जबकि उत्पादन क्षमता 1.2 करोड़ घनमीटर है। अतः अब समय आ गया है कि सामाजिक वानिकी को थोड़ा और परिमार्जित कर सरकार बेकार की पड़ी भूमि पर इसे प्रतिबद्ध होकर विकसित करे। अन्यथा पर्यावरण के संकट भयावह परिणाम दे सकते हैं। सरकारी आंकड़े बताते हैं कि अंग्रेजों के आने से पूर्व यहां लगभग 40 प्रतिशत भूमि पर जंगल थे, जबकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह आधे (19 प्रतिशत) से भी कम के आंकड़े पर आ गये। वर्ष 1989–2003 के बीच भारत में कुल भूमि पर लगभग 20 प्रतिशत ही वन के आंकड़े प्राप्त होते हैं, जबकि इन वर्षों में भी सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास वनों की सुरक्षा हेतु किये गये।

देश में 2012 तक कुल भूमि का 33 प्रतिशत भाग वनाच्छादित करने का लक्ष्य है, इस स्थिति में सामाजिक वानिकी ही इन उद्देश्यों को पूरा कर सकती है। हमारे देश में पंचायती राज को सामाजिक कल्याण हेतु प्रतिष्ठापित किया गया है। समाज के सर्वांगीण विकास की महती जिम्मेदारी अब नवीन पंचायत राज व्यवस्था के ही सुपुर्द की गयी है अर्थात पर्यावरण को स्वच्छ एवं हरियाली युक्त रखने में पंचायती राज महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकती है। चूंकि विश्व की आबादी का छठा भाग भारत में होने और जनसंख्या में हर वर्ष 1.6 करोड़ की बढ़ोतरी को देखते हुए भारत को बड़े दायित्व को निर्वाह करने की आवश्यकता है। जहां एक ओर विकसित राष्ट्र अत्यधिक उपयोग और पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाली जीवन शैलियों के लिए दोषी हैं, वहीं हम भारतवासी प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन करने से पीछे नहीं हटते। इस परिस्थिति में समाज, पंचायत एवं वनविभाग का काम आपसी गठबंधन, सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहित कर बड़ी मात्रा में इन समस्याओं से निजाज दिला सकते हैं। वस्तुतः सामाजिक वानिकी एक ऐसी बहुउद्देशीय योजना है, जिसके सम्पूर्ण क्रियान्वयन से आर्थिक विकास को तो बढ़ावा मिलेगा ही साथ ही साथ समाज के वातावरण को भी प्रदूषण रहित एवं अनुकूल बनाया जा सकता है। कृषि वैज्ञानिकों के द्वारा सामाजिक वानिकी को मुख्यतया तीन वर्गों में विभक्त किया गया है–कृषि वानिकी, शहरी वानिकी तथा ग्रामीण वानिकी।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए वृक्षारोपण जरूरी

कृषि वानिकीः कृषि वानिकी के अंतर्गत फसल उत्पादन के साथ–साथ वृक्षारोपण का भी प्रावधान है। इसमें फलदार वृक्ष, आयुर्वेदिक पौधे तथा सब्जियों को प्राथमिकता दी जाती है। फसलों तथा वृक्षों की परस्पर सफलता के लिए जरूरी है कि कृषि फसलों के अनुरूप वृक्ष प्रजातियों का चुनाव किया जाये। इस चुनाव में स्थान विशेष की मिट्टी, वर्षा, तापमान, आर्द्रता आदि की प्रमुख भूमिका होती है। इस तरह कृषि वानिकी खेतों की सामान्य पैदावार व गुणवत्ता को प्रभावित किये बिना ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाती है। चूंकि ग्रामीण समाज परंपरागत कृषि को ही अपनाने पर जोर देता है और जोखिमपूर्ण तथा लम्बी अवधि वाली खेती को अपनाने में उदासीन होता है। अतः पंचायत का यह दायित्व बनता है कि वे अपने क्षेत्र के किसानों को प्रोत्साहित करे तथा इस तरह की कृषि हेतु सम्मान योजना का सूत्रण व क्रियान्वयन कर अपने क्षेत्र में सामाजिक वानिकी को विकसित करें। इसमें सरकारी अनुदान को छोटे किसानों तक पहुंचाकर पंचायत अपने इस दायित्व का निर्वहन कर सकती है।

शहरी वानिकीः शहरी वानिकी का लक्ष्य शहर के लोगों के घरों के दरवाजे तक वृक्षों को पहुंचाना है। अतः विभिन्न मौसमों के हिसाब से शहरों, कस्बों, पार्कों, घरों, सार्वजनिक मार्गों व खाली पड़ी भूमि पर सजावटी, सुन्दर व आकर्षक किस्म के फलदार व फूलदार पौधे लगाये जाते हैं। यह पेड़–पौधे शहर की सुंदरता तो बढ़ाते ही हैं, वहां के प्रदूषित वातावरण को स्वच्छ भी करते हैं।

ग्रामीण वानिकीः ग्रामीण वानिकी को दूसरे शब्दों में विस्तार वानिकी भी कहते हैं। ग्रामीण वानिकी के अन्तर्गत सामुदायिक भूमि, पंचायत भूमि, बंजर भूमि तथा सड़कों, रेलवे लाइनों, नहरों आदि के किनारे वृक्षारोपण किया जाता है। इसके अंतर्गत उत्खनन से विकृत क्षेत्रों को पुनः उपयोगी बनाना, ग्रामीण सड़क निर्माण तथा अन्य

गरीब लोगों के लिए बीमा योजना

केन्द्र सरकार ने ग्रामीण भूमिहीन परिवारों के लाभ के लिए आम आदमी बीमा योजना नामक एक नई योजना आरंभ की है। यह योजना भारतीय जीवन बीमा निगम (एलआईसी) द्वारा कार्यान्वित की जा रही है।

यह योजना ग्रामीण भूमिहीन परिवारों के लिए लागू की गई है। इसके लिए आयु 18 से 59 वर्ष है। प्रीमियम की राशि प्रति सदस्य 200 रुपए है, जिसका केन्द्र सरकार और संबंधित राज्य सरकार द्वारा समान रूप से हिस्सा लिया जाएगा। स्वाभाविक मौत होने पर 30 हजार रुपए, दुर्घटना में मृत्यु होने पर 75 हजार रुपए और पूर्ण रूप से विकलांग (स्थायी रूप से) होने पर 75 हजार रुपए (दुर्घटना में दोनों आंखों या दोनों अंगों की हानि या एक आंख और एक अंग की हानि) आंशिक रूप से विकलांग होने पर 37, 500 रुपए (दुर्घटना में एक आंख अथवा एक अंग की हानि) दिए जाएंगे। लाभार्थियों के नौवीं से 12वीं कक्षा के बीच पढ़ने वाले दो बच्चों को, प्रत्येक बच्चे को प्रति छमाही 600 रुपए छात्रवृत्ति के रूप में दिए जाएंगे।

सरकार ने प्रीमियम अदायगी और छात्रवृत्तियों के संबंध में व्यय के दायित्व को पूरा करने के लिए क्रमशः एक हजार करोड़ रुपए और 500 करोड़ रुपए की निधियों के सृजन का अनुमोदन किया है। (पसूका)

कुटीर व लघु उद्योग के लिए कच्चेमाल की आपूर्ति हेतु वृक्षों का विकास करना शामिल है। कृषि वानिकी के विपरित इस वानिकी में प्रस्तुत भूमि पर स्वामित्व सामुदायिक होता है। अतः पंचायत अपने विकास कार्यक्रमों में ग्रामीण वानिकी को शामिल कर पारिस्थितिकीय संतुलन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है। इससे वातावरण में हरियाली और नमी का समावेश होगा तथा एक निश्चित समय के बाद पंचायत को वृक्ष के रूप में एक बड़ी निधि भी हाथ आयेगी। 73 वें संविधान संशोधन के फलस्वरूप संविधान के अनुच्छेद–243–जी में पंचायत के सामाजिक व विकासात्मक कार्यों की सूची उपबंधित की गयी है। भारत के सभी राज्यों में ग्रामीण वानिकी को बढ़ावा देने के उद्देश्य से पंचायत राज अधिनियम में ऐसी व्यवस्था की गई है, जिससे पंचायत वानिकी कार्यक्रमों को पर्याप्त संरक्षण व प्रोत्साहन दे। उदाहरण स्वरूप बिहार पंचायत राज अधिनियम–2006 की धारा–22 एवं 45 में कहा गया है कि पंचायत, कृषि एवं बागवानी के विकास हेतु उपयुक्त योजना तैयार करे तथा बंजर भूमि के विकास हेतु पंचायत की विकास राशि से सहयोग प्रदान करे। इसी तरह धारा–73 में जिला परिषद के संदर्भ में यह प्रावधान किया गया है कि बागवानी को प्रोत्साहित करने हेतु वह किसानों को आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करे तथा कृषि उत्पादन को बढ़ाने हेतु संसाधनों का विकास करे।

सचमुच सामाजिक वानिकी को बढ़ावा देने हेतु सरकारी स्तर पर पंचायत से अधिक उपयुक्त कोई और दूसरा अभिकरण नहीं हो सकता। कारण यह है कि पंचायत समाज के मध्य में स्थित है और वह किसानों की आवश्यकता एवं उनकी समस्याओं से पूर्व परिचित है। अतः समेकित योजना एवं चरणबद्ध तरीकों से पंचायत, सामाजिक वानिकी को पूर्ण विकसित कर सकती है। चूंकि राष्ट्रीय बागवानी मिशन योजना सम्पूर्ण देश में लागू है जिसमें पंचायत को भी उत्तरदायी बनाया गया है। पंचायत, स्थानीय नागरिकों की सहभागिता से तथा सरकारी निर्देशों के अनुरूप कार्य करके सचमुच पर्यावरण के अनुकूल वानिकी को विकसित कर सकती है।

भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र में वनों की उपस्थिति प्रतिशत में

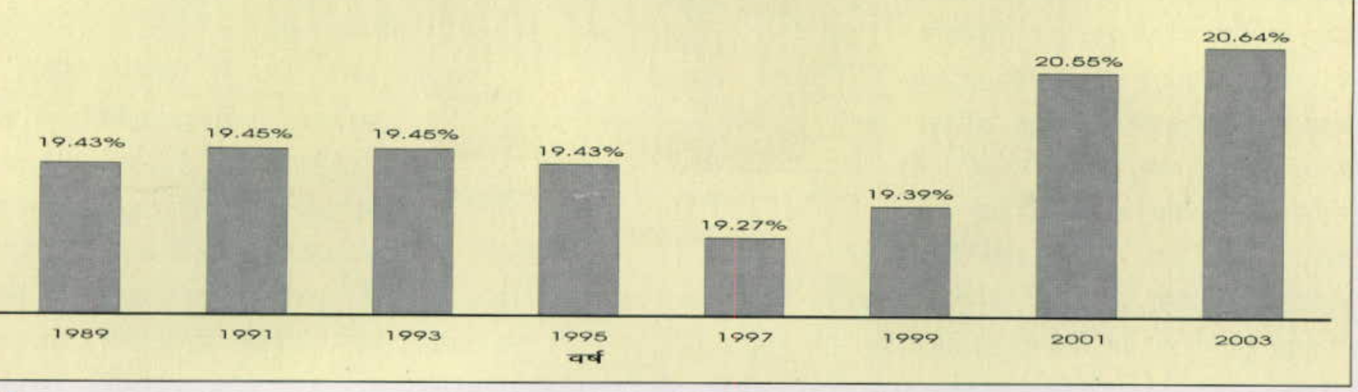

ग्रामीण क्षेत्रों में दूरसंचार सेवा

30 सितम्बर, 2007 तक देश के ग्रामीण क्षेत्रों में कुल 50,520 ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन कनेक्शन प्रदान किए गए हैं। शेष 16,302 गांवों, जिनके संबंध में मुख्यतः पूर्व में भारतीय उपग्रह, इनसेट–4सी पर आबंटित उपग्रह ट्रांसपॉन्डरों की अनुपलब्धता के कारण विलम्ब हुआ था, में जून, 2008 तक ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन की सुविधा प्रदान कर दिए जाने की संभावना है।

भारत संचार निगम लिमिटेड (बीएसएनएल) के साथ किए गए करार के निबंधन और शर्तों के अनुसार नवम्बर 2007 तक देश के शेष 66,822 टेलीफोन सुविधा रहित गांवों में ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन सुविधा प्रदान की जानी है। इसमें घने वन क्षेत्रों/नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में पड़ने वाले तथा 100 से कम आबादी वाले गांव शामिल नहीं हैं। (पसूका)

वस्तुतः संविधान के 73वें संशोधन के अनुसरण में अधिनियमित पंचायत राज अधिनियम में प्रदत्त ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों तथा जिला परिषदों के वानिकी कार्यों एवं अधिकारों के संदर्भ में यह निर्णय लिया गया है कि वन विभाग द्वारा किये जाने वाले सामाजिक एवं फॉर्म वानिकी के नये कार्य अब जिला परिषद द्वारा संपादित किये जाएंगे। इन कार्यों के संपादन में वन प्रमण्डल, जिला परिषद को आवश्यक सहयोग प्रदान करेंगे। इसके साथ ही पंचायत समिति अपने क्षेत्र में सामाजिक वानिकी के नये कार्य वन विभाग की जगह स्वयं करेगी। इन कार्यों के संपादन में वन विभाग के क्षेत्रीय पदाधिकारी, पंचायत समिति एवं ग्राम पंचायत को आवश्यक सहयोग प्रदान करेंगे। वानिकी को बढ़ावा देने हेतु पंचायतें अपने संसाधन का स्वयं उपयोग कर सकती हैं। पंचायत अपने क्षेत्र में गैर वन भूमि की पहचान कर इन भूमियों का उपयोग वृक्षारोपण हेतु कर सकती है। इस उद्देश्य से पंचायत आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण कार्यक्रमों को आयोजित कर अपने क्षेत्र के नागरिकों को जागरुक कर सकती है तथा सरकार द्वारा प्राप्त निधियों को अधिकाधिक ग्रामीण वानिकी में खर्च कर वृक्षों का पुनरुत्थान कर सकती है।

किन्तु यह भारतीय समाज में वानिकी कार्यक्रमों की विडम्बना ही है कि पंचायत अपनी इस शक्ति और दायित्व का प्रयोग वृक्षारोपण हेतु नहीं कर अन्य अनुपयोगी योजनाओं में कर रही है। भारत में वृक्षों के रूपान्तरण एवं पुनरुत्थान की असीम संभावनाएं हैं। चूंकि सामाजिक वानिकी के अंतर्गत किसी क्षेत्र विशेष में पौधों को लगाने हेतु प्रजातियों का चुनाव लोगों की उपयोगिता तथा जलवायु कारकों यथा–तापमान, आर्द्रता, वर्षा, मिट्टी आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है। अतः पंचायत जो एक लोकतांत्रिक संस्था है, इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकती है। वह स्थानीय कृषि तकनीकों को विकसित कर सकती है तथा जरूरत पड़ने पर प्रयोग के लिए सामुदायिक भूमि पर नयी कृषि को आमंत्रित कर सकती है। यूं तो भारत में सर्वत्र नाइट्रोजन की कमी को देखते हुए नाइट्रोजनयुक्त पौधों का ही चुनाव किया जाना बेहतर है फिर भी सामाजिक वानिकी के तहत चुनी हुई अधिकतर प्रजातियां प्रायः जल्दी तैयार होने वाली, अधिक उपजाऊ, सूखे को सहन करने वाली तथा बहुउद्देशीय होती हैं। यानी उनसे ईंधन, चारा, फल, खाद आदि एक साथ प्राप्त किये जा सकते हैं। साथ ही साथ ये लघु एवं कुटीर उद्योगों के स्रोत भी हो सकते हैं। जैसे–रेशमकीट पालन, मधुमक्खी पालन, टसर एवं जट्रोफा की खेती, फल उत्पादन, मेन्था की खेती, फूल की खेती तथा लाख निर्माण आदि जैसे कुछ उपयोगी वनोत्पाद। इस प्रकार सामाजिक वानिकी पर्यावरण की जरूरतों के अनुकूल रोजगार सृजन की असीम संभावनाएं भी रखता है। आज सामाजिक वानिकी को पारिस्थितिक प्रणाली तथा पर्यावरण के पर्याय के रूप में मान लिया गया है जबकि पंचायत ग्रामीण विकास की प्रमुख संस्था है। यदि इन दोनों के घनिष्ट संबंधों को अंगीकार कर लिया जाये तो इससे बहुत सारे रचनात्मक प्रभाव सामने आयेंगे। जैसे–जलीय संतुलन में सुधार, मृदा उर्वरता में सुधार, वायु के आर्द्रता धारण में वृद्धि, पेड़–पौधों के लगने से मृदा अपरदन में कमी, चारागाहों का विकास, मरूस्थलीय क्षेत्रों में वृक्षारोपण से वन विस्तार आदि।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक वानिकी एक ऐसा यंत्र है, जिससे एक साथ कई समस्याओं से मुक्ति पायी जा सकती है। पंचायत के द्वारा अगर इन कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू कर दिया जाये, तो ग्रामीणों की मूलभूत जरूरतों की पूर्ति तो होगी ही साथ ही वातावरणीय प्रदूषण, आंधी–तूफान, बाढ़, सूखा तथा मृदा अपरदन से भी निजात पायी जा सकती है तथा वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु प्राकृतिक आवास भी उपलब्ध हो सकते हैं। हमें इस दिशा में आवश्यक सामाजिक लामबंदी के लिए पंचायतों एवं ग्राम सभाओं सरीखी जमीनी स्तर की लोकतांत्रिक संस्थाओं से लाभ उठाने की आवश्यकता है।

(लेखक काबले सच समाचारपत्र के चीफ रिपोर्टर हैं।)
ई–मेलः nirmalanand12@sofy.com

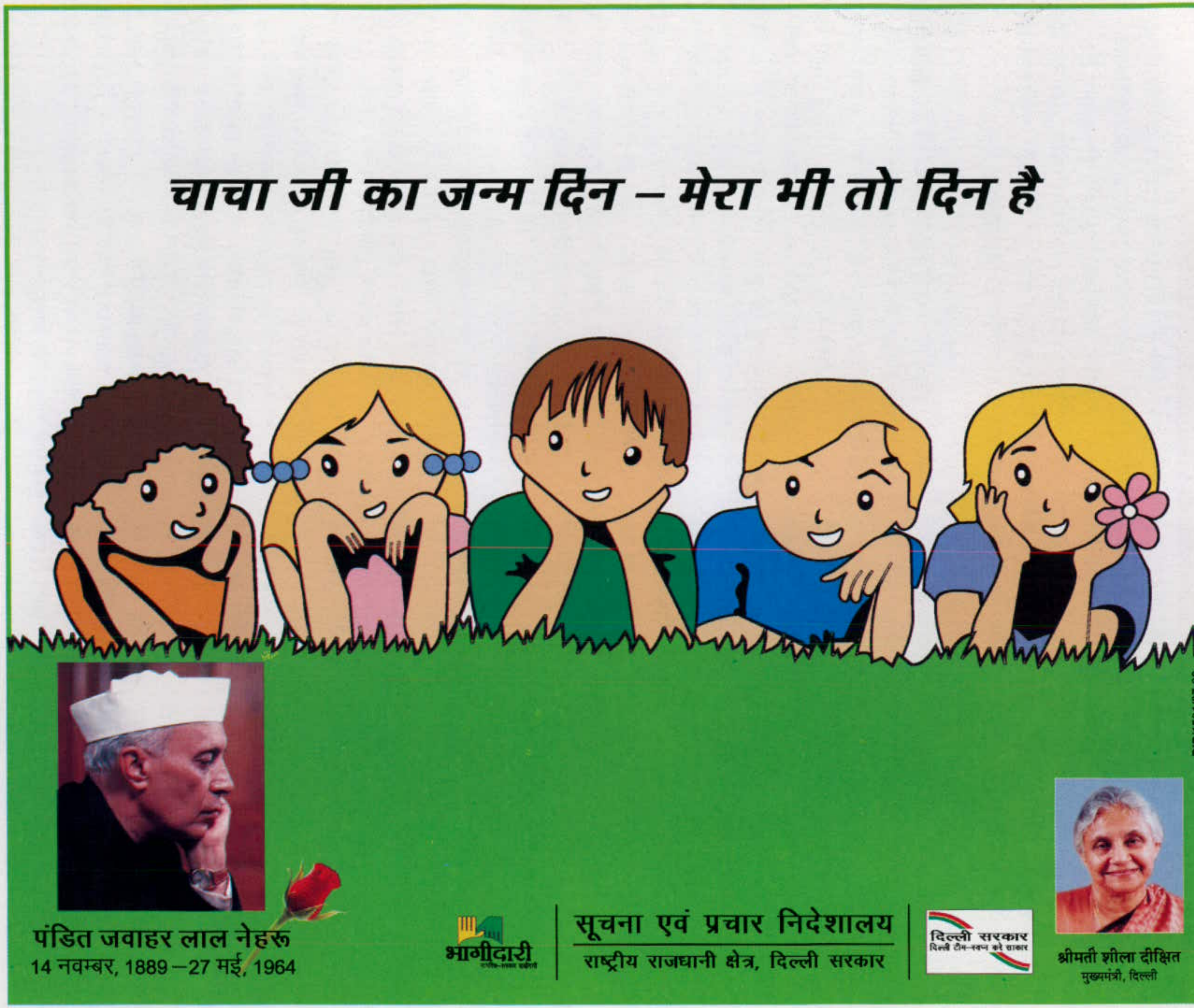

चाचा जी का जन्म दिन – मेरा भी तो दिन है
पंडित जवाहर लाल नेहरू
14 नवम्बर, 1889 – 27 मई, 1964
भागीदारी
सूचना एवं प्रचार निदेशालय
राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार
दिल्ली सरकार
श्रीमती शीला दीक्षित
मुख्यमंत्री, दिल्ली
DIP/1531/07-08

KH-01/08/03

लवणीय भूमि के लिए वृक्षों की कुछ बहुउपयोगी प्रजातियां

डॉ. अरविन्द सिंह

हरित क्रान्ति के परिणास्वरूप खाद्यान्न उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि के साथ ही अनेक समस्यायें भी पैदा हुई जिनमें भूमि क्षरण भी शामिल है। भूमि लवणता भूमि क्षरण का ही एक उदाहरण है। लवणीय भूमि अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक है क्योंकि इस प्रकार की भूमि फसल उत्पादन योग्य नहीं होती है। लवणीय भूमि पर किसान लवणरोधी वृक्षों की प्रजातियों का रोपण करके न केवल लवणीय भूमि का उद्धार कर सकते हैं अपितु इससे आर्थिक लाभ भी कमा सकते हैं।

भूमि लवणता देश की एक प्रमुख समस्या है। आंकड़े बताते हैं कि देश की लगभग 7 मिलियन हेक्टेयर भूमि लवणता से प्रभावित है जो कि देश की कुल भूमि के 2.13 प्रतिशत क्षेत्रफल का प्रतिनिधित्व करती है। भूमि लवणता आमतौर से सिंचाई जल के कुप्रबंधन विशेषकर जल जमाव के कारण होती है। लगभग 40 प्रतिशत लवणीय भूमि का विस्तार उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा तथा पंजाब राज्यों में है जो कि हरित क्रान्ति के प्रमुख केन्द्र रहे हैं।

लवणीय भूमि वह होती है जिसमें घुलनशील नमक की मात्रा ज्यादा होती है जो फसलों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करती है। इस प्रकार की मृदा की विद्युतीय चालकता 4 से ज्यादा होती है। विनिमेय सोडियम का प्रतिशत 15 से कम तथा pH (पीएच) मान 8.5 से कम होता है। लवणीय मृदा में सोडियम, कैल्शियम एवं मैगनीशियम के क्लोराइड एवं सल्फेट मुख्य घुलनशील नमक होते हैं।

लवणीय भूमि देश की अर्थव्यवस्था के लिए प्रमुख क्षति है क्योंकि इससे मृदा की उत्पादकता प्रभावित होती है। परिणामस्वरूप लवणीय भूमि बंजर या बेकार भूमि में तब्दील हो जाती है। बढ़ती आबादी को देखते हुए लवणीय भूमि का उद्धार अति आवश्यक है। लवणीय भूमि की जैविक उद्धार विधि सबसे सस्ती एवं उत्तम विधि होती है। वृक्षों की कुछ प्रजातियों में भूमि लवणता को बर्दाश्त करने की क्षमता होती है अतः इन लवणरोधी वृक्षों की प्रजातियों से लवणीय भूमि को आच्छादित कर न सिर्फ उनका उद्धार किया जा सकता है। वरन् इन वृक्षों की प्रजातियों से आर्थिक लाभ भी कमाया जा सकता है। लवणीय भूमि के पुनरुद्धार में कारगर कुछ वृक्षों की प्रजातियों एवं उनके आर्थिक लाभ निम्नलिखित हैं :

करंज (पानगैमिया पिन्नेटा) : यह दलहनी कुल (फैबेसी) का छोटा अथवा मध्य आकार का वृक्ष होता है जो लवणीय भूमि पर बड़ी आसानी से उगता है। इसकी वृद्धि दर काफी तेज होती है। करंज अत्यन्त ही महत्वपूर्ण बहुउपयोगी वृक्ष है। इसके बीज का तेल गठिया, त्वचा आदि बीमारियों के इलाज में प्रभावी होता है। इसके बीज के तेल का औद्योगिक उपयोग साबुन, मोमबत्ती इत्यादि के निर्माण में होता है। इसके अतिरिक्त तेल का उपयोग जलाने हेतु भी किया जाता है। बीज के तेल को परिसंस्करण के पश्चात् इसे डीजल के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। अतः बीज अथवा बीज के तेल से आर्थिक लाभ की प्राप्ति की जा सकती है। करंज की पत्तियों में प्रोटीन की अधिकता के कारण इसका उपयोग पालतू पशुओं के चारे हेतु किया जाता है। पत्तियों का उपयोग हरी खाद के रूप में भी किया जाता है। बीज की खली का उपयोग कार्बनिक खाद के रूप में मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए किया जाता है। लकड़ी का इस्तेमाल हल तथा बैलगाड़ी का पहिया बनाने में किया जाता है। इसकी लकड़ी का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता सकता है।

बहुउपयोगी करंज (पानगैमिया पिन्नेटा) वृक्ष

अर्जुन (टर्मिनेलिया अर्जुना) : अर्जुन एक बहुउपयोगी वृक्ष है जो पुष्पीय पौधों के काम्बरिटेसी कुल से संबद्ध है। अर्जुन की छाल में औषधीय गुण पाये जाते हैं जिसका उपयोग हृदय सम्बन्धी बीमारियों के उपचार हेतु किया जाता है। अतः अर्जुन की छाल को दवा कम्पनियों को बेचकर आर्थिक लाभ कमाया जा सकता है। इसकी पत्तियों को हरे चारे के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। पत्तियों का उपयोग रेशम कीटों के पालन हेतु भी किया जा सकता है।

औषधीय गुण युक्त अर्जुन (टर्मिनेलिया अर्जुन) वृक्ष

बहेड़ा (टर्मिनेलिया बेलिरिका) : यह एक विशाल वृक्ष होता है जो पुष्पीय पौधों के काम्बरिटेसी कुल से सम्बद्ध है। बहेड़ा अपने औषधीय गुणों के लिए विख्यात है। वृक्ष की छाल एवं फल में औषधीय गुण पाये जाते हैं। वृक्ष के तने की छाल का उपयोग एनिमिया तथा ल्युकोडरमा के उपचार में किया जाता है। फल का उपयोग बदहजमी, कब्ज, जलोदर, बवासीर, डाइरिया, कुष्ठ रोग के उपचार में किया जाता है। फल का उपयोग 'त्रिफला चूर्ण' जैसी आयुर्वेदिक औषधि के निर्माण में होता है। अतः फल से आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। पत्तियों को हरे चारे के रूप में पालतू पशुओं हेतु इस्तेमाल किया जा सकता है।

आंवला (फाइलेन्थस ऐम्बेलिका) : यह पुष्पीय पौधों के यूफोरबियैसी कुल का तेज वृद्धि दर वाला छोटा वृक्ष है जिसके लवणीय मृदा में उगने की क्षमता होती है। फल का उपयोग मुरब्बा, च्यवनप्राश आदि बनाने में होता है। आंवले का फल विटामिन सी का उत्तम स्रोत होता है। फल की बाजार में मांग होने से इससे आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। सूखे फल के चूर्ण का उपयोग देशी दवा के रूप में कब्ज के उपचार में किया जा सकता है। पत्तियों का उपयोग आंख की बीमारियों जैसे आपथैल्मिया तथा अंधेपन के उपचार में किया जाता है। इसकी लकड़ी का प्रयोग कृषि औजार बनाने में किया जाता है।

इमली (टेमिरिण्डस इण्डिका) : यह फैबेसी कुल का विशाल वृक्ष होता है। इमली के फल में 12 प्रतिशत टारटेरिक अम्ल पाया जाता है। इसके फल का उपयोग चटनी आदि बनाने में होता है। बीज जेलोज का स्रोत होता है जिसका उपयोग कपास एवं पटसन उद्योग में होता है। इसकी लकड़ी के टिकाऊ होने के कारण इसका व्यापक उपयोग निर्माण कार्यों में होता है। लकड़ी का इस्तेमाल ईंधन रूप में भी किया जा सकता है।

सीरस (एलबिजिया लिबेक) : यह दलहनी कुल (फैबेसी) का एक विशाल बहुउपयोगी वृक्ष है। इसकी हरी पत्तियों में प्रोटीन की अधिकता के कारण इसका इस्तेमाल हरे चारे के रूप में किया जाता है। सीरस की लकड़ी काफी मजबूत एवं टिकाऊ होती है। अतः इसका उपयोग निर्माण कार्यों में बड़े पैमाने पर किया जाता है। सीरस की लकड़ी को सागौन एवं शाखू के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। सूखी पत्तियों के काढ़े का इस्तेमाल श्वास सम्बन्धी बीमारियों, जैसे दमा, ब्रान्काइटिस इत्यादि के उपचार में होता है।

सफेद सीरस (एलबिजिया प्रासेरा) : यह तेज वृद्धि दर वाली विशाल वृक्ष की प्रजाति है, जो पुष्पीय पौधों के दलहनी कुल (फैबेसी) से सम्बद्ध है। वृक्ष का तना सफेद रंग का होता है अतः इसे सफेद सीरस के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसमें लवणता को बर्दाश्त करने की प्रचुर क्षमता होती है। इसकी लकड़ी निर्माण कार्यों हेतु अति उत्तम होती है। पत्तियों में प्रोटीन की अधिकता के कारण उन्हें हरे चारे के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

बेर (जिजिफस जुजुबा) : यह एक छोटे आकार का कंटीला वृक्ष होता है जो पुष्पीय पौधों के रैमनेसी परिवार से सम्बद्ध है। इसकी वृद्धि दर काफी तेज होती है। इसका फल खाने योग्य तथा फास्फोरस का प्रमुख स्रोत होता है। फल से आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। पत्तियों का उपयोग हरे चारे के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त पत्तियों का उपयोग रेशम कीट पालन में भी किया जा सकता है।

शहतूत (मोरस अल्बा) : यह छोटे आकार का वृक्ष होता है जो पुष्पीय पौधों के मोरेसी कुल से सम्बद्ध है। शहतूत का फल खाने योग्य होता है। फल में विटामिन सी तथा खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में होते हैं। अतः फल की बाजार में मांग से आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। पत्तियों का उपयोग बड़े पैमाने पर रेशम कीट पालन में किया जाता है। लकड़ी का उपयोग खेल सम्बन्धी उपकरणों जैसे हाकी स्टिक, टेनिस रैकेट, बैडमिन्टन रैकेट, क्रिकेट स्टम्प इत्यादि के निर्माण में होता है।

उपर्युक्त वृक्षों की प्रजातियां लवणीय भूमि में सफलतापूर्वक उगने की क्षमता रखती हैं। यह प्रजातियां अपने मृत अवशेषों जैसे पत्तियां, टहनियां, पुष्प आदि को लवणीय मृदा सतह पर गिराती हैं

गेहूं बुआई दायरा 80 लाख हेक्टेयर तक पहुंचा

कृषि मंत्रालय द्वारा अद्यतन एकत्र आंकड़ों के अनुसार देश में रबी की बुआई सुचारु रूप से चल रही है। गेहूं की बुआई 80 लाख हेक्टेयर में हुई है जबकि पिछले सप्ताह के अंत तक 35 लाख हेक्टेयर में बुआई हुई थी। बहरहाल यह पिछले वर्ष की इसी अवधि की तुलना में हुई बुआई (104 लाख हेक्टेयर) से कम है।

शीतकालीन चावल की बुआई कुछ दक्षिणी राज्यों में हाल में शुरू हुई है। अब तक 90 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में धान की रोपाई हो चुकी है।

मोटे अनाज की बुआई 49.44 लाख हेक्टेयर में हुई है जबकि पिछले साल 53.75 लाख हेक्टेयर में बुआई हुई थी।

रबी तिलहन की बुआई 57.32 लाख हेक्टेयर में हुई है जबकि पिछले साल 75.33 लाख हेक्टेयर में बुआई हुई थी। सरसो/रेपसीड की बुआई 42.44 लाख हेक्टेयर में हुई है जबकि पिछले रबी मौसम में इसी समय तक 57.58 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में बुआई हुई थी।

रबी दलहन की बुआई 78.88 लाख हेक्टेयर में हुई है जबकि पिछले रबी मौसम की इसी अवधि में 79.07 लाख हेक्टेयर में बुआई हुई थी। (पसूका)

जिनके विघटन से धीरे–धीरे मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में परिवर्तन होता है परिणामस्वरूप मृदा अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करती है जिसका उपयोग पुनः फसल उत्पादन के लिये किया जा सकता है।

निष्कर्ष

लवणीय भूमि हरित क्रान्ति से प्रभावित ग्रामीण भारत विशेषकर पंजाब, हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश की प्रमुख समस्या है। इस प्रकार की क्षरित भूमि का उद्धार समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है ताकि खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाया जा सके। लवणीय भूमि का जैविक उद्धार लवणरोधी वृक्षों की प्रजातियों के रोपण से संभव है। किसान लवणरोधी वृक्षों की बहुउपयोगी प्रजातियों का लवणीय भूमि पर रोपण कर न सिर्फ उनसे व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं वरन् आर्थिक लाभ भी कमा सकते हैं। इससे पर्यावरण संरक्षण में भी सहायता मिलेगी। साथ ही लगातार गिर रहे भूमिगत जलस्तर में भी बढ़ोतरी होगी।

(लेखक पुनरुद्धार पारिस्थिकविद् हैं।)
ई–मेल : arvindsingh_bhu@yahoo.com

सदस्यता कूपन

मैं/हम **कुरुक्षेत्र** का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 100 रुपये, दो वर्ष के लिए 180 रुपये, तीन वर्ष के लिए 250 रुपये का (जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक .... दिनांक .... संलग्न है।

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर *निदेशक, प्रकाशन विभाग* को नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....

पता ....

.... पिन ....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक

प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, तल–7, रामकृष्णपुरम,

नई दिल्ली–110 066

थारू जनजाति : एक सांस्कृतिक पहचान

तीर्थ प्रकाश और संतोष कुमार सिंह

मानव जीवन के विकसित एवं पिछड़े रूप के मध्य जनजाति मानव समाज का ऐसा अंग है जो संस्कृति की प्रायः प्राचीनतम अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। सभ्य समाज की प्रगतिशीलता से यदि उनकी जीवन शैली की तुलना की जाए तो उनके अत्यधिक पिछड़ेपन के भाव स्पष्ट होते हैं। विकास जीवन की अनिवार्य ही नहीं आवश्यक शर्त भी है किंतु इसमें यह कतई जरूरी नहीं कि विकास को प्राप्त करने के लिए अपने सांस्कृतिक इतिहास के उस पहलू को भूल जाए जिसके आधार पर सभ्य समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ। आज भी इस प्रगतिशील वाचाल समाज में मानव जीवन की उस अवस्था का आभास होता है जो अपनी सांस्कृतिक विरासत को समेटे आधुनिकीकरण से दूर शांत एवं चुप्पी के साथ जीवन निर्वाह कर रहा है। इस समाज को डॉ. मजूमदार ने जनजाति के रूप में निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है–

थारू समुदाय में स्त्रियों का सम्मानजनक स्थान है

"कोई जनजाति परिवारों तथा पारिवारिक वर्गों का एक ऐसा समूह है, जिसका सामान्य नाम है, जिनके सदस्य एक निश्चित भू–भाग पर निवास करते हैं, तथा विवाह, व्यवसाय के विषयों में कुछ निषेधाज्ञाओं का पालन करते हैं, जिन्होंने आदान–प्रदान सम्बन्धी तथा पारस्परिक कर्त्तव्य विषय पर निश्चित व्यवस्था का विकास कर लिया हो।"

जनजाति समुदाय को और स्पष्ट करते हुए गिलिन कहते हैं "स्थानीय जनजातीय समूहों का ऐसा समुदाय जनजाति कहा जाता है, जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है तथा जिसकी एक सामान्य संस्कृति है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि स्थानीय जनजातीय समूहों का ऐसा समुदाय जनजाति कहा जाता है जो निश्चित भू–भाग पर रहने वाला आदिम मानव समूह है जो एक सामान्य भाषा, धर्म, प्रथा, परम्परा, व्यवसाय और अन्य सामाजिक नियमों के द्वारा एक सूत्र में बंधकर सामाजिक संगठन को जन्म देता है। यहां हम एक ऐसे ही आदिम मानव समूह की चर्चा करेंगे जिसे भारतीय समाज में थारू जनजाति के नाम से जाना जाता है।

भारतीय संविधान में जनजातियों की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। संविधान के अनुच्छेद 342(1) में कहा गया है कि "राष्ट्रपति किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के सम्बंध में और जहां वह राज्य है वहां उसके राज्यपाल से परामर्श करने के पश्चात लोक अधिसूचना द्वारा उन जनजातियों या जनजाति समुदायों के भागों के समूहों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजन के लिए यथास्थिति उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के सम्बन्ध में अनुसूचित जनजातियां समझा जायेगा।" संविधान (उत्तर प्रदेश) अनुसूचित जनजाति आदेश, 1967 (सी.ओ. 78) दिनांक 24–06–1967 के अनुसार कुल पांच जनजातियों को मान्यता दी गई– थारू, जौनसारी, बुक्सा, भोटिया और राजी।

थारू जनजाति : एक परिचय

उत्तर भारत क्षेत्र में निवास करने वाली जनजातियों में थारू का एक सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन है। जनजाति का यह सामाजिक रूप उत्तर भारत के उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्रों में नेपाल की सीमा के साथ–साथ जनपद उधमसिंह नगर (उत्तराखण्ड) से गोण्डा, बहराइच, लखीमपुर खीरी और गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) तक फैले हैं।

अपने शाब्दिक अर्थ में "थारू" कई अन्य शब्दों के प्रभाव से बना है जैसे – "थरना" जिसका अर्थ परिभ्रमण करना है, "थर" जिसका अर्थ शराब, "थार" का अर्थ स्थल है। इसी आधार पर थारू घूमने वाले, शराब का सेवन करने वाले या थार मरूस्थल से सम्बन्ध रखने वाले माने जाते हैं। ये लोग अपने आपको हिन्दू धर्म से जुड़ा हुआ और राजपूतों का वंशज मानते हैं। विभिन्न शोधों से स्पष्ट हुआ है कि अपनी बनावट और रंग–रूप आदि में ये मंगोलियन जाति के नजदीक माने गए हैं। वर्तमान समय में भारत में थारू जनजाति सम्पूर्ण जनसंख्या के 60 प्रतिशत उत्तराखण्ड और 40 प्रतिशत उत्तर प्रदेश में पाये जाते

हैं।

साधारण समाज से तुलना करने पर थारू जनजाति अपने विशेष सांस्कृतिक मूल्यों, परम्पराओं और अवधारणाओं को समेटे नजर आती हैं। प्रगतिशील समाज में स्त्री–पुरुष अनुपात का जो अंतर राष्ट्रीय समस्या बना हुआ है, यह समस्या रूढ़िवादी एवं परम्परावादी थारू समाज में कम देखने मिलती है बल्कि कुछ स्थानों में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। थारू समाज प्रगति से दूर तर्क और बुद्धि से उपेक्षित रूढ़ियों पर निर्भर एक ऐसा समाज है जिसमें नई मान्यताओं के प्रवेश का मार्ग सूक्ष्म है। सामाजिक दृष्टिकोण से थारू पिछड़ेपन के प्रतीक माने जाते हैं। इनकी संस्कृति एवं सभ्यता आदिम समाजों जैसी है जिसमें जनजातीय विशेषताएं मौजूद हैं। परिवार सामाजिक संगठन की इकाई मानी जाती है जो वंश या गोत्र पर आधारित होता है। एक गोत्र के लोगों के बीच की भावना उत्पन्न होती है जो सामाजिक संगठन को निरंतर एकता के सूत्र में बांधे रखती है। यह जनजाति पितृसत्तात्मक समाज के नियमों का पालन करती है। परम्पराओं के अनुसार थारू संयुक्त परिवारों में आस्था रखते हैं किंतु कहीं–कहीं पर एकांकी परिवारों का प्रचलन भी देखने को मिलता है। इस समुदाय के लोग अंतर्विवाही होते हैं। विवाह जीवन के दो महत्त्वपूर्ण संस्कारों में एक माना जाता है, जबकि दूसरा संस्कार अंतेष्टि होता है। जीवन के इन दो संस्कारों के मध्य थारू परम्पराओं से बंधे आत्मनिर्भरता में धरती पुत्र हैं।

थारू समुदाय में स्त्रियों को सम्मान और विशेषाधिकार प्राप्त है। उत्सवों और त्योहारों को मनाने में स्त्री–पुरुष के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाता। शायद ही कोई क्षेत्र ऐसा है जहां स्त्रियों की इच्छा को प्रमुख स्थान नहीं दिया जाता। पुरुषों को रसोई घर में घुसने तक का अधिकार नहीं और उनके भोजन को छूने मात्र की भी उन्हें छूट नहीं है। पुरुष रसोई घर के बाहर बैठकर भोजन करते हैं और स्त्रियां भीतर। फसल बेचने के लिए बाजार जाने का कार्य भी स्त्रियों के अधिकार क्षेत्र में है। वे हल चलाने के अतिरिक्त अन्य सभी कार्य पुरुषों से कंधा मिलाकर करती हैं। स्त्रियों के कार्यों में पुरुष सहायता तो कर सकते हैं किंतु किसी भी कार्य के लिए रोक नहीं सकते हैं। स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार भी प्राप्त है।

थारू जनजाति में बाल विवाह को प्राथमिकता

थारू जनजाति में अधिक आयु में विवाह करना अच्छा नहीं माना जाता, इसलिए सामाजिक स्तर पर आलोचना होते हुए भी इनमें बाल विवाह प्रचलित है। शिक्षा का ग्राफ ऊपर जाने तथा अन्य समुदायों के सम्पर्क में आने के बावजूद भी ये अपनी परम्पराओं को नहीं छोड़ पाए हैं। इनकी परम्पराओं में तथाकथित सभ्य समाजों के लक्षण भी दिखाई देते हैं, जैसे–परिवारों में वृद्धों, अपाहिजों और बेरोजगारों को आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना, विधवा विवाह एवं विधुर विवाह को मान्यता देना आदि प्रमुख हैं। थारू जनजाति में प्रत्येक व्यक्ति को विवाह करना और बच्चों को जन्म देना एक धार्मिक कर्तव्य माना जाता है। अतः विवाह की अनिवार्यता परिलक्षित होती है। माघ माह विवाह के लिए अति उत्तम मानाते जाता है।

थारू जनजाति हिन्दू धर्म होने के कारण दीपावली, दशहरा, तीज, गंगा स्नान आदि त्योहारों में होली को सर्वाधिक उल्लास का त्यौहार माना जाता है। प्रतिवर्ष माघ मास की पूर्णिमा को होली का प्रारम्भ माना जाता है, जिसकी समाप्ति फाल्गुन मास की अमावस्या को होती है। थारू जनजाति द्वारा इसे उजली और अनेरी होली कहा जाता है। थारू जनजाति में अनेक देवी–देवताओं के पूजन का प्रचलन है। वे दुर्गा,महादेव, सत्यनारायण आदि देवताओं के प्रति विशेष आस्था रखते हैं किंतु सर्वाधिक मान्यता प्राप्त भूमसेन (भूमिया) की पूजा होती है। गांव के पूर्व दिशा में पीपल या नीम के नीचे ऊंचे स्थान पर इसकी स्थापना की जाती है। थारू जनजाति समुदाय में जादू–टोना के प्रति विशेष आस्था देखने को मिलती है। जादू–टोना में स्त्रियां निपुण होती हैं। संतानोत्पत्ति, भवन निर्माण, फसल और पशु रक्षा, रोग निवारण, जंगली पशुओं और चोर डाकुओं से रक्षा आदि में जादू–टोना का विशेष प्रयोग किया जाता है। जादू–टोना में विशेषज्ञता प्राप्त व्यक्ति को भरड़ा कहा जाता है।

थारू जनजाति का मुख्य पेशा कृषि है। इसके अलावा वे पशुपालन, मछली पकड़ना, जंगलों से भोज्य सामग्री को इकट्ठा करना आदि उनके जीवन निर्वाह के स्रोत रहे हैं। फुरसत के समय में टोकरियां, मिट्टी के बर्तन, रस्सी, चटाइयां आदि बनाने

का कार्य किया जाता है। थारू समुदाय में श्रम विभाजन पाया जाता है। पुरुष कृषि सम्बन्धी कार्यों के अलावा मकानों का निर्माण और मरम्मत करते हैं। स्त्रियों द्वारा घरेलू काम करना, टोकरियां और मिट्टी के बर्तन बनाना, धान की मड़ाई और निकाई आदि कार्य किया जाता है। इनका मुख्य भोजन चावल और मछली है। ये लोग एक विशेष प्रकार का भोजन बनाते हैं जिसे 'जाद' कहा जाता है, जो चावल में जड़ी–बूटी या मसालों के साथ भाप में पकाकर बनाया जाता है। वर्षा ऋतु में मछलियों को सुखाकर आने वाले समय के लिए सुरक्षित रख लिया जाता है। थारू समुदाय गाय और भैंस भी पालते हैं जिससे वे दूध ग्रहण करते हैं। इनमें नाश्ते को 'कलेवा' दोपहर का खाना 'मिगनी' और शाम का भोजन 'बुरी' कहलाता है। पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों में कच्ची शराब पीने का प्रचलन है। विवाह के समय मांस और उत्सवों पर शराब पीने की मनाही है।

थारू जनजाति में लोक गीतों, लोक नृत्यों और हस्तकला भी सुंदर संगम की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करता है। थारूओं के लोकगीत, लोकनृत्य उनके कष्टों, दुःखों और उत्साह को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं। विवाह, उत्सव, फसलों को बोने और काटने के उपलक्ष्य पर अक्सर लोकगीत सुनने को मिल जाते हैं। हस्तकला के रूप में इनके द्वारा बनायी गई टोकरी कुशलता को प्रदर्शित करती है। मूंज, बांस और नरकुल से ये लोग अनेक प्रकार की सुनहरी टोकरियां बुनते हैं जिन पर फलों और जानवरों की आकृतियां दिखाई देती हैं। थारू जनजाति में पुरुष धोती, कुर्ता और टोपी धारण करते हैं वहीं स्त्रियां लहंगा, चोली, ओड़नी और अंगरखी। पुरुष पगड़ी भी बांधते हैं और साथ ही साथ कंधे पर कम्बल भी रखते हैं किंतु सभ्यता की रोशनी ने उन्हें पैंट और कमीज की तरफ आकर्षित किया है। विशेष उत्सवों पर पुरुष सफेद पगड़ी, भंगिया (ढ़ीला–कुर्ता), सुथनी (पाजामा), अलगा (मफलर), फैंटा (कमर पट्टी) आदि भी धारण करते हैं। परम्परागत नृत्यों में पुरुष स्त्रियों के कपड़े और आभूषण पहनते हैं। पुरुष सफेद और स्त्रियां लाल–काला रंग का कपड़ा अधिक पसंद करते हैं। गोदना गुदवाने का प्रचलन स्त्री–पुरुष दोनों में पाया जाता है। विवाहित स्त्रियां आवश्यक रूप से अपने हाथ पर पति का नाम गुदवाती हैं।

वधू की डोली ले जाते लोग

थारू सम्प्रदाय में हिन्दुओं जैसे संस्कार पाए जाते हैं जिनमें जन्म संस्कार, मुण्डन संस्कार, जनेऊ संस्कार और अंतिम मृत संस्कार हैं। जन्म संस्कार के अन्तर्गत जब कोई बच्चा जन्म लेता है तो उसको और उसकी मां को अलग से कमरे में रखा जाता है। उस कमरे में दाई के अलावा कोई ऐसी स्त्री ही जा सकती है जिसे कि इस कार्य के बारे में पूर्ण जानकारी हो। जिस कमरे में वे दोनों रहते हैं वहां 11 दिनों तक कोई भी नहीं जा सकता। स्त्री स्वयं 7–8 दिनों के बाद नहाती है और बच्चे को केवल मां ही नहलाती है। जब तक बच्चा नहाता नहीं है कोई उसे छूता नहीं है। बच्चे का नामकरण 8–12 दिनों में किया जाता है। इस अवसर पर स्वादिष्ट व्यंजन बनाए जाते हैं, नाच–गाना किया जाता है और पूरे गांव को भोजन करवाया जाता है। थारू जनजाति में बच्चे का मुण्डन संस्कार तब कराया जाता है जब बच्चा चलने लगता है। बच्चे का मुण्डन उसके फूफा करते हैं और बच्चे का मुण्डन दीपावली के समय या त्यौहारों में करना शुभ मानते हैं। थारू जनजाति अपने को महाराणा प्रताप के वंशज मानने के कारण जनेऊ धारण करते हैं। मृत संस्कार में शव के मुंह में तुलसी के पत्ते, दही और सोने का टुकड़ा डालते हैं। शव को नहलाकर उस पर घी या चंदन का लेप लगाते हैं। शव को अग्नि (दाह) देने का कार्य उसका पुत्र या फिर भाई करता है। 13वीं के दिन बाल काटते हैं तथा मृत के नाम से पूजा की जाती है। अगर कोई नाबालिग छोटे बच्चे की मृत्यु हो जाए तो उसे मिट्टी में गाड़ दिया जाता है।

थारू जनजाति के आवास कच्ची ईंट, लकड़ी के लट्ठों और नरकुल आदि से बने होते हैं। आवास उत्तर–दक्षिण की ओर स्थित होते है और द्वार पूरब की ओर होते हैं किंतु प्रवेश द्वार दक्षिण के अंतिम कमरे से होते हैं। इनके घरों में खिड़कियां नहीं होती। दीवारों को प्रायः गोबर से लीपते हैं। दीवारों पर हाथी और घोड़े की आकृति होती है। थारू समुदाय में शिक्षा का स्तर निम्न कहा जा सकता हैं। इनमें अधिकांश लोग अशिक्षित हैं। वे केवल

कृषि को ही अपना मुख्य व्यवसाय मानते हैं। स्त्रियों का विवाह जल्दी कर दिया जाता है जिससे शिक्षा का प्रसार रुक गया है। इस प्रकार थारूओं की शैक्षिक स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती।

मूल्यांकन

अनुसूचित जनजातियां भी भारतीय समाज का अभिन्न अंग है जिसे हम अनदेखा नहीं कर सकते हैं। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था "आदिवासी अजायबघर के शो पीस नहीं है, वे राष्ट्र के आदिम अंग हैं।" हमारे संविधान निर्माताओं ने भी अनुसूचित जनजातियों के मर्म को समझते हुए संवैधानिक उपबंध किए जिनमें मुख्य है– अनु. 14, अनु. 15(4), अनु. 16, अनु. 16(4), अनु. 16(4क), अनु. 46, अनु. 225, अनु. 243 (घ), अनु. 244 (1,2), अनु. 275 (1), अनु. 330, अनु. 332, अनु. 335, अनु. 338, अनु. 339, 340, अनु. 342, अनु. 371 (क,ख,ग), एवं पांचवीं और छठी अनुसूचियां शामिल हैं। इसके अलावा जनजातियों के विकास के लिए 1974 में जनजातीय उपयोजना, 1987 में भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास संघ, 1999, में जनजातीय कार्य मंत्रालय, 2001 में राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त विकास निगम आदि अनेक संस्थायें स्थापित की गई। अनुसूचित जनजातियों के बालक–बालिकाओं के लिए शिक्षा के विशेष प्रावधान और समय–समय पर सरकार अनेक छात्रवृत्तियों की घोषणायें करती रही है।

थारू जनजातीय समुदाय की अपनी परम्परायें, मान्यतायें,विश्वास और प्रक्रियायें हैं जिनके अनुगमन द्वारा उनका समाज संचालित होता है, जिसके कारण उस समाज का एक पृथक स्वरूप अस्तित्व में आता है। यह अन्य सभ्य समाजों से पूर्णतया भिन्न है, ये भिन्नताएं ही सभी को अपनी ओर आकर्षित करती है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत औद्योगीकरण, नगरीकरण, शिक्षण, तकनीकी ज्ञान, संचार व्यवस्था आदि के विकास के कारण भारतीय समाज आधुनिक स्वरूप प्राप्त कर रहा है। दूसरी तरफ थारू जनजातीय समाज आज भी अपनी परम्पराओं से आबद्ध है जिस कारण उनका विकास आशाओं के अनुरूप नहीं हुआ।

थारू जनजाति के विकास न होने के पीछे निम्न कारण गिनाये जा सकते हैं : –

- शरणार्थियों के आगमन के कारण थारू जनजाति की जमीन छिनती चली गई जिसके कारण आज अधिकांश थारू समुदाय भूमिहीन हो गए।
- नौकरियों में आरक्षण के बावजूद थारू जनजाति की आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है।
- औद्योगीकरण के कारण खेती योग्य भूमि दलदल का रूप ले चुकी है।
- थारू जनजाति जादू–टोना में अधिक विश्वास करते हैं जिसके कारण वे रूढ़िवादी परम्पराओं में घिरे हुए हैं।
- थारू जनजाति के अनेक गांव आज भी सम्पर्क मार्ग से वंचित हैं।
- थारू जनजाति में पीने के पानी का भी संकट है।
- थारू जनजाति में राजनीतिक चेतना का अभाव है।
- मिशनरियों ने भी थारूओं की संस्कृति पर कुठाराघात किया है।
- थारू जनजाति की अधिकांश संख्या ऋणग्रस्तता से पीड़ित है।
- थारू जनजाति तराई में निवास करती है जिस कारण अधिकतर जनसंख्या को अनेक बीमारियों ने घेर रखा है।

केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और स्वयंसेवी संस्थाएं जनजातियों के विकास और उत्थान के लिए प्रयासरत हैं लेकिन अनेक योजनाओं और परियोजनाओं की उद्घोषणाओं के बाद भी जनजातियों की स्थिति संतोषजनक नहीं कहीं जा सकती। कागजी आंकड़ों पर ध्यान आकृष्ट करने के बाद हम पाते हैं कि विकास की प्रक्रिया तीव्र है किंतु व्यावहारिक स्थिति को देखने के बाद यह कहा जा सकता है कि वास्तविक विकास आशाओं के अनुरूप नहीं है। यह अनुभव किया गया कि अनुसूचित जनजाति के पिछड़ेपन पर स्थाई समाधान सामान्य रूप से उनके सर्वांगीण विकास तथा मुख्य रूप से उनके आर्थिक उत्थान की योजनाओं को क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

सरकार को चाहिए कि शिक्षा के माध्यम से सामाजिक –सांस्कृतिक कार्यक्रमों के द्वारा जनजातीय समाज में नवचेतना का प्रचार–प्रसार करे और विकास को ऐच्छिक बनाया जाए न कि बाध्यकारी। यदि विकास के कार्यक्रमों को नियोजित और ठोस पूर्ण तरीके से लागू किया गया तो जनजातियों की सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना को आधार मिलेगा और उसका रूपान्तरण उस प्रकार का होगा जिस प्रकार उनके लिए अपेक्षित है। साथ ही साथ वे अपनी संस्कृति का संरक्षण करते हुए राष्ट्र की धारा में अपने आपको जोड़ सकेंगे।

(लेखक राजकीय महाविद्यालय पौड़ी, (उत्तराखंड) में राजनीति विज्ञान विभाग में प्रवक्ता हैं)

लघु एवं सीमान्त कृषक तथा ग्रामीण विकास

डॉ. सतीश चन्द्र दुआ एवं नरेश कुमार गुप्ता

ग्रामीण विकास से तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्र की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में संरचनात्मक परिवर्तन से लगाया जाता है जो ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले निम्न आय वर्ग के जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए किये जाते हैं। इससे एक ओर तो देश के आर्थिक विकास में अवरोध उत्पन्न करने वाले तत्वों जैसे अत्यधिक गरीबी, अत्याचार, अत्यंत निम्न उत्पादकता एवं ग्रामीण समाज का शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति दिलायी जाती है तो दूसरी तरफ उनके विकास की प्रक्रिया को तीव्र करने एवं स्वतः संपोषणीय बनाने के लिए उन्हें बुनियादी सेवाएं प्रदान की जाती हैं तथा आधारभूत ढांचे को सुधारा जाता है। जैसे सिंचाई हेतु पर्याप्त मात्रा में विद्युत आपूर्ति, उचित दामों पर उर्वरकों और कीटनाशकों को उपलब्ध कराना, यातायात एवं भण्डारण सुविधाओं का विकास करना, सरकारी खरीद मूल्य कृषकों के अनुकूल होना, कृषि ऋण, कृषि बीमा और अनुदानों को आसानी से सुलभ कराना और इसके साथ यह भी आवश्यक है कि कृषि अनुपूरक व्यवसायों जैसे पशुपालन, मत्स्य पालन का विकास हो। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए ग्रामीण विकास का महत्व और भी बढ़ जाता है जहां देश की 60 प्रतिशत आबादी लगभग 115 मिलियन परिवार कृषि क्षेत्र में नियोजित है और यह भारत वर्ष का सबसे अधिक रोजगार प्रदान करने वाला क्षेत्र है।

किन्तु अत्यन्त दुख की बात यह है कि पिछले एक दशक से देखा जाये तो कृषि में सार्वजनिक निवेश कम हो जाने से कृषि जनित अर्थव्यवस्था धीमी पड़ गई। नवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि की विकास दर 2.2 प्रतिशत वार्षिक थी जो कि बढ़कर दसवीं पंचवर्षीय योजना में 2.3 प्रतिशत वार्षिक हो गयी। इन आंकड़ों से यह बात स्पष्ट होती है कि पिछले दशक में कृषि की विकास वृद्धिदर मात्र 0.1 प्रतिशत रही। हालांकि सेवा क्षेत्र और उद्योग क्षेत्र में तो कुछ विकास होता रहा जिसके परिणामस्वरूप भारत का सकल घरेलू उत्पाद पिछले दशक में औसत रूप से 8.6 प्रतिशत की अच्छी स्थिति में रहा। किन्तु इसमें कृषि क्षेत्र का योगदान 2.73 प्रतिशत पर ही रुका रहा। देश के सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र ने सबसे अधिक लगभग 50 प्रतिशत के आस–पास योगदान प्रदान किया और कृषि क्षेत्र ने मात्र 22 प्रतिशत का योगदान प्रदान किया है। इससे भारत तीव्र विकास करने वाले विकासशील देशों की श्रेणी में तो शामिल हो गया किन्तु देश असन्तुलित विकास के मार्ग पर ही बढ़ता रहा जिसके परिणामस्वरूप महंगाई बढ़ती गई और देश में मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो गयी। देखा जाये तो इसी बढ़ती हुई मुद्रा स्फीति ने देश के आपूर्ति पक्ष को कमजोर कर दिया। इसके साथ ही इस असंतुलित विकास से देश में आय की असमानतायें भी बढ़ी हैं। सेवा क्षेत्र और उद्योग क्षेत्र में तो लाभ एवं वृद्धियां हो रही हैं किन्तु देश के एक अरब से ज्यादा लोगों के पेट को भरने वाला कृषक अब बदहाल स्थिति में पहुंच गया है। जिनमें लघु एवं सीमान्त कृषकों की स्थिति तो अत्यन्त दयनीय एवं चिन्ताजनक हो गयी है।

लघु कृषकों से तात्पर्य उन कृषकों से लगाया जाता है जिनकी कृषि जोत का आकार एक हेक्टेयर से दो हेक्टेयर के बीच होता है तथा सीमान्त कृषकों में उन कृषकों को सम्मिलित किया जाता है जिनकी कृषि योग्य भूमि का आकार एक हेक्टेयर से कम हो। यदि हम पिछले कुछ वर्षों के जोत सम्बन्धी आंकड़ों को देखें तो यह एक ऐसे परिवर्तन को प्रदर्शित करता है जो आर्थिक दृष्टि से देश के लिए बिल्कुल लाभकारी नहीं है। यह परिवर्तन है सीमान्त तथा छोटी जोतों की संख्या में लगातार वृद्धि और अधिक दुर्भाग्य पूर्ण बात यह है कि सीमान्त जोत के आकार में यह वृद्धि छोटी जोत की तुलना में अधिक है और वर्तमान समय में लगभग 80 प्रतिशत कृषक परिवार लघु एवं सीमान्त कृषक वर्गों से सम्बन्धित हैं। एक ओर तो इनकी संख्या इतनी अधिक है कि सामाजिक दृष्टि से इनका अत्यधिक महत्व है और दूसरी तरफ कृषि योग्य भूमि का लगभग 52.3 प्रतिशत हिस्सा

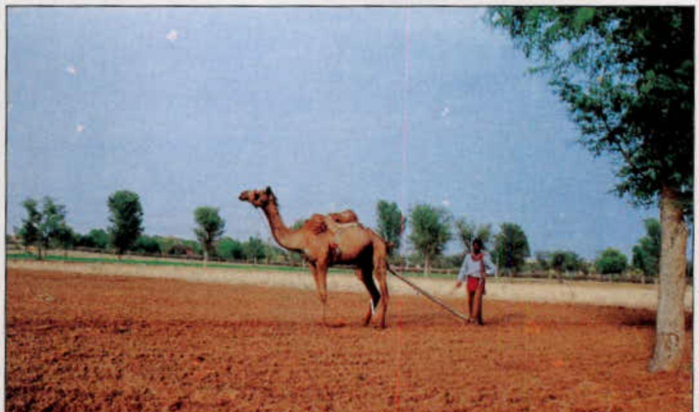

सीमान्त किसान अपने खेत की जोत निकालते हुए

इनके पास होने से इनका महत्व आर्थिक दृष्टि से अधिक माना जा सकता है। किन्तु देश के लिए सामाजिक एवं आर्थिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले इस वर्ग की आय इतनी कम है कि इनके गृहस्थ स्तर पर क्रय शक्ति की अपर्याप्तता के कारण इनका उपभोग बढ़ने के बजाय निरंतर गिरता चला जा रहा है और इधर कुछ वर्षों से तो इनके जीवन में अकाल जैसी स्थिति उत्पन्न होने लगी है।

इस प्रकार देखा जाये तो कृषि के विकास को विराम लग जाने से जहां एक ओर समाज का एक बड़ा वर्ग निरीह एवं अभावग्रस्त जीवन जीने को मजबूर होता जा रहा है वहीं दूसरी ओर यह भी निश्चित रूप से माना जा रहा है कि बिना कृषि के विकास के वर्तमान विकास दर को लम्बे समय तक बनाये रखना अथवा इसमें वृद्धि करना संभव नहीं होगा। सैद्धान्तिक रूप से भले ही यह माना जाता हो कि विकास का प्रारम्भ किसी और क्षेत्र जैसे सेवा क्षेत्र या उद्योग क्षेत्र के द्वारा किया जा सकता है किन्तु यथार्थ रूप में ये क्षेत्र अकेले न तो आर्थिक विकास का प्रारम्भ कर सकते हैं और न ही अकेले लम्बे समय तक विकास प्रक्रम को कायम रख सकते हैं और भारत जैसे देश के लिए तो यह बिल्कुल संभव नहीं होगा कि वह इस विशाल जनसंख्या का पेट भरने के लिए अनाज का आयात कर सके। अतः हमें स्वयं उत्पादन प्रणालियों में सुधार के माध्यम से कृषि का विकास करना होगा। इससे ग्रामीण विकास के साथ हमारे देश की विदेशी नीति में खाद्यान्न निर्भरता स्पष्ट होगी, मांग एवं पूर्ति में संतुलन हो जाने से महंगाई में वृद्धि नहीं होगी तथा बेराजगारी की मात्रा में भी कमी आयेगी और जैसा कि सहस्त्राब्दि विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कि 2015 तक उत्पादन को बढ़ाकर दोगुना कर लिया जायेगा, कृषि विकास अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अतः इस समय कृषि सम्बन्धी योजनाओं को द्विआयामी होना आवश्यक है जो पहले तो लघु एवं सीमान्त कृषकों को राहत पहुंचाये जिनकी कृषि में लागत जोखिम लाभ संरचना उल्टी होने से उन्हें आत्महत्या की स्थिति तक पहुंचा दिया है तथा दूसरी तरफ संरचनात्मक परिवर्तन के माध्यम से ऐसी दीर्घकालीन योजनाओं की आवश्यकता है जिससे यह समस्यायें दोबारा न बढ़े जैसे–ऋण राहत, बकाया ब्याज की माफी, बेहतर ऋण उपलब्धता। लघु एवं सीमान्त कृषकों का असंगठित क्षेत्र से ऋण प्राप्त करना ही दुष्चक्र में फंसना है किन्तु इनके पास ऋण प्राप्त करने का दूसरा सूत्र न होने से उन्हें यह ऋण असंगठित क्षेत्र से ही लेना पड़ता है। दूसरी तरफ पिछले 5–6 वर्षों से देश के कुछ मण्डलों में सूखा पड़ जाने के कारण भी इन कृषकों को भारी नुकसान उठाना पड़ा है। इससे उनकी आर्थिक स्थिति और खराब होती जा रही है। इस बदहाल स्थिति में वे न तो प्राप्त ऋण चाहे वह किसी भी स्रोत से प्राप्त किया गया हो, का भुगतान करने में सक्षम होते हैं और न ही परिवार का खर्च चलाने में। जबकि उन्हें अगली फसल के लिए भी धन की आवश्यकता होती है। ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक हो गया है कि भारत सरकार और अन्य वित्तीय संस्थाएं अपनी नैतिक जिम्मेदारी निभायें अन्यथा व्यापक कुपोषण और सामाजिक विग्रह बढ़ता ही जायेगा।

इन कृषकों के पास अपनी जीविका चलाने के लिए सिवाए कृषि के और दूसरा साधन न होने से भी इनकी समस्यायें बढ़ जाती हैं। इसके लिए आवश्यक कृषिगत सुधार के साथ–साथ कृषि से सम्बन्धित अन्य गतिविधियां जैसे–पशुपालन, मत्स्यपालन एवं कृषि के विविधीकरण में सुधार को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। हालांकि सरकार द्वारा गत वर्ष से पशुपालन एवं मत्स्यपालन की गतिविधियों में सुधार के लिए एक वृहत कार्यक्रम प्रारम्भ किया है जो इस दिशा में एक प्रशंसनीय कदम माना जा सकता है। किन्तु कृषि के विविधीकरण के लिए प्रभावशाली विपणन एवं आधुनिक बाजार व्यवहार आवश्यक है क्योंकि सूक्ष्म स्तर पर किये गये कई अध्ययनों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि लघु एवं सीमान्त कृषकों की बाजार में बिकने योग्य उपज का लगभग 50 प्रतिशत भाग संकटकालीन बिक्री के रूप में निकल जाता है और तत्काल भुगतान प्राप्त करने के लिए यह कृषक 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत तक रियायत देने को भी तैयार हो जाते हैं। इसलिए आवश्यक है कि भण्डारण सुविधाओं का विकास किया जाये। साथ ही उन्हें नगदी फसलों को उगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाये। अधिकतर देखा गया है कि लघु एवं सीमान्त कृषक फसलों के सम्मिश्रण के बारे में निर्णय केवल किसानों की घरेलू आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है जिससे उपलब्ध साधनों का भी अनुकूलतम प्रयोग नहीं हो पाता है। एक बड़ा किसान तो अपने साधनों के दुरुपयोग के परिणामों को सह सकता है परन्तु एक छोटा किसान नहीं। ऐसे किसानों को उत्पादन की एक आदर्श योजना से अवगत किया जाना चाहिए। यह योजना कृषि विशेषज्ञों द्वारा तैयार की जानी चाहिए। इसके साथ ही ग्रामीण एवं निर्धन परिवारों के लिए बीमा पालिसी की योजनायें प्रारम्भ की जानी चाहिए जिससे उनके जीवन में आने वाली आपदाओं से कुशलता पूर्वक निपट सकें और इनका जीवन सुरक्षित रह सके। सरकार द्वारा इस दिशा में भी एक सामाजिक सुरक्षा योजना प्रारम्भ की गई है जिसके अन्तर्गत प्रीमियम राशि का 50 प्रतिशत केन्द्र सरकार द्वारा वहन किया जायेगा।

लघु एवं सीमान्त कृषकों को अतिवृष्टि या अनावृष्टि से फसल सम्बन्धी भारी नुकसान उठाना पड़ता है। इससे उनकी आर्थिक स्थिति सुधरने के बजाय और बिगड़ती चली जाती है। भारत में मात्र 14 प्रतिशत ऐसे कृषक हैं जिन्हें फसल के बीमे की

सुरक्षा प्राप्त है और इनमें लघु एवं सीमान्त कृषकों का प्रतिशत अत्यधिक कम है। अधिकतर बड़े किसान ही अपनी फसल का बीमा कराने में सक्षम होते हैं। जिस तरह की योजना सरकार द्वारा निर्धन परिवार के मुखिया को बीमित करने के लिए प्रारंभ की गई है। उसी प्रकार की योजना इन लघु एवं सीमांत कृषकों की फसल के लिए प्रारम्भ की जानी चाहिए जिससे वे प्राकृतिक आपदाओं से आसानी से निपट सकें। इसके लिए एक वृहत योजना बनाने की आवश्यकता हैं जिसमें अधिक से अधिक कृषकों को सम्मिलित किया जा सके और उन्हें फसल सुरक्षा प्रदान की जा सके।

उत्पादन के लिए आदान आवश्यक हैं और इसके साथ यह भी आवश्यक है कि कृषकों को सही समय पर और उचित मूल्यों पर यह आदान उपलब्ध कराये जाये। देश में जनसंख्या के लगातार बढ़ने से खाद्यान्नों की मांग में भी लगातार वृद्धि होती जा रही है परन्तु कृषि के लिए भूमि का क्षेत्रफल निरंतर कम होता जा रहा है। चूंकि अब कृषि योग्य भूमि के क्षेत्रफल को बढ़ाना असंभव है इसलिए यह अपरिहार्य होता जा रहा है कि हमें कृषि योग्य उपलब्ध भूमि की प्रत्येक इकाई और सिंचाई हेतु प्राप्त जल की प्रत्येक भूमि का इतना कुशलतम उपयोग करना होगा कि जिससे उत्पादन में अधिकतम वृद्धि की जा सके। हमारे देश में उपलब्ध कृषि योग्य भूमि के मात्र 33 प्रतिशत से 38 प्रतिशत भाग को सिंचाई सुविधा प्राप्त है बाकी भाग या तो भूमिगत जल पर या वर्षा पर सिंचाई हेतु निर्भर रहते हैं। कई क्षेत्रों में तो भूमिगत जल के अनुचित दोहन के कारण भूमिगत जल की स्थिति काफी गम्भीर हो गयी है और इस समय लगभग 8 करोड़ हेक्टेयर भूमि को सिंचाई सुविधाओं की आवश्यकता है। ऐसी परिस्थिति में देश के कई क्षेत्रों में सूखा पड़ने से खाद्यान्न उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः यदि कृषि हेतु उपलब्ध भूमि पर ही पर्याप्त मात्रा में सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध करा दी जाये तो उत्पादन बढ़ाने में काफी सहायता मिल सकती है। कई बार यह भी देखा गया है कि लघु एवं सीमान्त कृषकों का अज्ञानतापूर्वक फसलों का चुनाव करना भी इस दिशा में बाधक सिद्ध होता है। वे उन फसलों को जिन्हें अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है अल्प जल उपलब्धता वाले क्षेत्रों में उगाते हैं जिससे उनका कृषि में जोखिम बढ़ जाता है। इसलिए सिंचाई सुविधाओं के पर्याप्त विकास के साथ इन कृषकों को फसल सम्बन्धी जानकारी होना भी अतिआवश्यक है।

थोड़ी सी पैदावार – कैसे पले परिवार

स्वतंत्रता की प्राप्ति के छः दशक के बाद भी लघु एवं सीमान्त कृषकों को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उचित दरों पर ऋण उपलब्ध न होना भी एक गहरी चिन्ता का विषय है। हालांकि अधिकतर लघु एवं सीमान्त कृषक अब उत्पादन के लिए ऋण लेते हैं न कि उपभोग के लिए। फिर भी बैंक इन कृषकों को ऋण देने में झिझकते हैं और मजबूरीवश उन्हें गांव के ही साहूकारों आदि से ऋण लेना पड़ता है। कुल कृषक परिवारों में से मात्र 28 प्रतिशत कृषकों को बैंकों से ऋण प्राप्त हो पाता है शेष बड़ा वर्ग असंगठित क्षेत्र से ही ऋण प्राप्त करने को विवश हो जाता है और यह असंगठित क्षेत्र के ऋणदाता इनसे 24 प्रतिशत से 36 प्रतिशत तक ब्याज की वसूली करते हैं। वाणिज्य बैंक भी इनमें कोई विशेष योगदान नहीं दे रहे हैं। यदि इन वाणिज्य बैंकों के पिछले कुछ वर्षों के व्यवसाय को देखा जाये तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पिछले कुछ वर्षों से इन वाणिज्य बैंकों ने अपने कुल व्यवसाय का 11 प्रतिशत से 12 प्रतिशत तक ऋण ही कृषि क्षेत्र को उपलब्ध कराया है और इनमें भी लघु एवं सीमान्त कृषकों का प्रतिशत अत्यन्त कम है। इन लघु एवं सीमान्त कृषकों को संस्थागत स्रोत से ऋण उपलब्ध कराना नितान्त आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक गांव में कम से कम एक बैंक की शाखा खोली जाये और बैंक अधिकारी एवं ग्राम पंचायत द्वारा लघु एवं सीमान्त कृषक परिवारों को चिन्हित करके उन्हें गांव में ही आसान दर पर ऋण उपलब्ध कराये जायें। हालांकि इसके लिए ग्रामीण बैंकों की स्थापना की जा चुकी है किन्तु यह ग्रामीण बैंक भी वाणिज्य बैंकों की भांति ही अपना लाभ अधिकतम करने के लिए कृषि क्षेत्र के अलावा अन्य क्षेत्रों को और कृषि क्षेत्र में भी बड़े किसानों को ऋण उपलब्ध करा रहे हैं।

इसके साथ यह भी आवश्यक है कि कृषि के विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्र के आधारभूत ढांचे को सुधारा जाये और बुनियादी सुविधाओं का विस्तार किया जाये। इससे जहां एक ओर ग्रामीण कृषकों के जीवन स्तर में सुधार आयेगा वहीं कृषि के विकास में भी भारी मदद मिलेगी। यातायात सुविधाओं के विस्तार से ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों के बीच सम्पर्क बढ़ेगा तथा

कृषक अपनी फसल को मध्यस्थों के हाथ बेचने के बजाय स्वयं शहर की बड़ी मण्डियों में बेचकर उसका उपयुक्त मूल्य प्राप्त कर सकेगें। पर्याप्त विद्युत आपूर्ति से वे आवश्यकतानुसार सिंचाई सुनिश्चित कर सकेंगे। कृषकों का शिक्षित होना तो अत्यन्त आवश्यक है जिससे उन्हें सरकारी योजनाओं, बैंक की नीतियों, ब्याजदर, सरकारी विपणन प्रणाली और मुख्य रूप से उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो सके।

यदि हमारे देश का कृषि क्षेत्र मजबूत हो जाये तो हमारे देश की अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन सकती है और हमारा देश तो पहले से ही विश्व का दूसरा सबसे बड़ा कृषि उत्पादक देश रहा है। आधारभूत ढाचें में सुधार एवं बुनियादी सेवाओं में विस्तार के माध्यम से इसका और विकास किया जा सकता है। इसीलिए कृषि वैज्ञानिक एम.एस. स्वामिनाथन ने कहा भी है कि "बिना दूसरी हरित क्रान्ति के देश आगे नहीं बढ़ सकता है और न ही औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में भी बढ़त की वर्तमान दर बदस्तूर बरकरार रह सकती है।" कृषि क्षेत्र में आधारभूत ढांचे को सुधारने, कृषि के विविधीकरण, बुनियादी सेवाओं और उच्च मूल्य वाली कृषि आपूर्ति शृंखलाओं से छोटे किसानों को जोड़ने से निश्चित रूप से लघु एवं सीमान्त कृषकों की आय में वृद्धि हो जायेगी। क्योंकि जब तक समाज का यह बड़ा वर्ग भूख और गरीबी जैसी बीमारियों से पीड़ित रहेगा तब तक हमारे समग्र आर्थिक विकास का कोई महत्व नहीं। एफ.ए. ओ. द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा भी गया है कि यदि लघु एवं सीमान्त कृषकों को पर्याप्त आर्थिक प्रोत्साहन दिये जाये तो ये भी इनसे इतने ही प्रेरित होते हैं जितने कि बड़े किसान। और यह लघु एवं सीमान्त कृषक अधिकतम उत्पादन करके देश के विकास में महत्वूपर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें चीन एवं जापान के कृषकों में देखने को मिल सकता है। चीन में कृषि जोत का औसत आकार मात्र आधा हेक्टेयर है और वह भी आमतौर पर आठ या नौ खण्डों में बंटी हुयी है। इसके अतिरिक्त वहां के बहुत से कृषि जोतों का आकार इस औसत से भी छोटा है फिर भी पिछले बीस वर्षों में उन खेतों में जिन्हें छोटी खेतों की श्रेणी में सम्मिलित किया गया था, कृषि गतिहीन नहीं रही बल्कि चीन की कृषि के वार्षिक विकास में इन छोटे कृषकों की उपज ने एक आश्चर्यजनक लगभग 60 प्रतिशत का योगदान किया है। इसी तरह जापान में भी देखा जाये तो 94 प्रतिशत खेतों का आकार दो हेक्टेयर से कम है तथा इनके अधीन कृषि क्षेत्र के कुल क्षेत्र का भाग लगभग 70 प्रतिशत है। किन्तु फिर भी वहां कृषि का आधारभूत ढांचा और बुनियादी सेवाएं इतनी विस्तृत हैं कि चावल जो कि जापान की एक मुख्य फसल है का उत्पादन 6000 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है जबकि यू.एस.ए. में जहां कृषि जोत का आकार जापान की अपेक्षा काफी अधिक है वहां चावल का प्रति हेक्टेयर उत्पादन मात्र 4600 किलोग्राम है।

अतः यदि चीन और जापान के छोटे कृषक कृषि के विकास में इतना महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं तो भारत के लघु एवं सीमान्त कृषकों का ऐसा न कर पाने का कोई विशेष कारण दिखायी नहीं देता बस आवश्यकता है तो उन्हें प्रोत्साहित करने और उन्हें प्रोत्साहन देने की। इस संदर्भ में हम भारत में ही पश्चिम बंगाल की कृषि की विकास दर का अवलोकन करें तो यह बात स्पष्ट होती है कि 1982 से 1992 तक के दशक में कृषि की विकास दर पश्चिम बंगाल में देश के सभी राज्यों में सबसे अधिक रही और इसका मुख्य श्रेय यहां के लघु एवं सीमान्त कृषकों को ही जाता है। उस समय पश्चिम बंगाल ही देश का एक मात्र ऐसा राज्य था जहां भूमि सुधार पूरी गम्भीरता के साथ लागू किया गया था। इसलिए वहां कृषकों को फसलों को उगाने के बारे में पूरी स्वतंत्रता मिल गयी थी। इसमें से अधिकतर किसानों ने तिलहन की फसल उगाने का निर्णय लिया जिससे राज्य की विकास दर काफी बढ़ गयी।

किन्तु यह याद रखना होगा कि पिछले 30 वर्षों में ग्रामीण ऋण के बारे में किये गये सभी परिवर्तन एवं सुधार गरीबी पर करारी चोट करने में विफल रहे हैं और न ही वे देश की ग्रामीण जनसंख्या के निम्नतम 70 प्रतिशत की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए पर्याप्त ऋण उपलब्ध करा पाये हैं।

पिछले कुछ वर्षों से देश में लगातार किसानों की आत्माहत्यायें बढ़ती जा रही है जिनमें लघु एवं सीमान्त कृषकों में यह स्थिति अधिकतर परिलक्षित हो रही है। लघु एवं सीमान्त कृषकों की आत्महत्याओं पर कई अध्ययन हुए हैं जिनमें इसका सबसे बड़ा कारण खेती में घाटा और कृषि कार्य के जोखिम हैं जिसकी वजह से किसान बुरी तरह कर्जदार हो जाते हैं। हमारी कृषि के इस बुरे दौर को कृषि उपज की मूल्य व्यवस्था और कर्ज व्यवस्था में सुधारों की जरूरत है। दूसरी तरफ इसके मानवीय पक्ष जैसे पीड़ित परिवार की विधवा और बच्चों के लिए पुख्ता व्यवस्था करने जैसी चीजों पर ध्यान देना ही होगा। हमारी कृषि फिलहाल एक भंवर में फंसी है। अगर खेतों का पर्यावरण शास्त्र और अर्थशास्त्र गलत दिशा में गया तो फिर कृषि क्षेत्र में कुछ भी सही दिशा में नहीं जायेगा। खेती को बचाने और काम व आदमी की सुरक्षा के लिए किसानों को फिलहाल जीवनदायी समर्थन की जरूरत है।

(लेखक कानपुर विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में रीडर हैं।)

पौष्टिक तत्वों से भरपूर रोग निवारक अंगूर

जगनारायण

पौष्टिकता और रोग निवारक क्षमताओं से भरपूर अंगूर के फल गरीब, अमीर, बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, रोगी और स्वस्थ सभी के लिये लाभकारी हैं। शरीर की संपूर्ण क्रियाओं को निर्बाध रूप से चलाने के लिए उसे पोषक तत्वों की नियमित आपूर्ति अनिवार्य है। इसके अभाव में मनुष्य कई तरह के रोगों का शिकार हो जाता है। अंगूर के फल और रस में शरीर के लिए आवश्यक कई तरह के उपयोगी प्रोटीन एवं खनिज तत्वों की उपस्थिति दर्ज की गई है। अंगूर का फल शरीर की क्षतिग्रस्त कोशिकाओं और रक्त कणों के पुनर्निर्माण की क्रियाओं को तेज और सक्रिय करता है। जिससे मनुष्य का शरीर निरोग और क्रियाशील बना रहता है।

प्राकृतिक शर्करा से भरपूर पके अंगूर

शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार के परिश्रम करने वाले व्यक्तियों के लिए अंगूर एक उपयोगी फल है। यह परिश्रम के कारण नष्ट होने वाली कोशिकाओं के स्थान पर नई कोशिकाओं का निर्माण कर श्रम से होने वाले मानव शरीर की क्षति को पुनर्स्थापित करता है। अंगूर का फल शरीर के लिए प्रोटीन की आपूर्ति का श्रेष्ठतम् साधन है। अंगूर प्रोटीनों का श्रेष्ठतम् पाचन करने के साथ ही शरीर में नव कोशिकाओं का निर्माण करता है।

अंगूर में पाये जाने वाले पोषक तत्व और उनकी विशेषतायें

अंगूर के फल में शरीर के लिए उपयोगी पोटैशियम, सोडियम तथा कैल्शियम पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इसके फल से प्राप्त शर्करा, अम्ल पित्त के प्रभाव को नियंत्रित करती है। अंगूर का फल श्रेष्ठतम् रक्त शोधक का भी काम करता है। वैज्ञानिकों ने इसके फल के विश्लेषण में इसे अनेक पोषकीय एवं उपयोगी तत्वों का समुच्चय बताया है। यह सूखने के बाद किशमिश और मुनक्के के रूप में और उपयोगी हो जाता है। अंगूर में नाड़ी तंत्र को शक्तिशाली बनाने वाले ग्लूकोज़, पोटैशियम, शर्करा की उपस्थिति यथेष्ट मात्रा में पाई जाती है। यह बिना इन्सुलिन के ही शरीर को शर्करा, ग्लूकोज, तथा फ्रैक्टोज़ प्रदान करता है। श्रम से थके हुए नाड़ी तंत्र को अंगूर से यथेष्ट मात्रा में पोषक तत्वों की आपूर्ति होती है। जिससे थक कर शिथिल हुआ नाड़ी मण्डल ऊर्जा से परिपूर्ण होकर फिर से सक्रिय हो उठता है। अंगूर के फल में पाये जाने वाले रासायनिक तत्व शरीर के अंदर के विषकारी तत्वों को बिना किसी हानि के बाहर कर देते हैं।

लौह तत्वों की प्रचुरता के कारण रक्तजनित समस्या में अंगूर अत्यन्त उपयोगी है। यह लौह तत्वों एवं रक्त के अभाव वाली स्त्रियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसके फल के रस की दस औंस मात्रा ही रक्त अभाव के विरुद्ध सक्रिय हो जाती है। इसके नियमित सेवन से शरीर में रक्त और लौह तत्वों का अभाव नहीं होता। यह गर्भवती महिलाओं के लिए अत्यन्त उपयोगी है। आयुर्वेद में स्त्री रोगों की महौषधि द्राक्षासव के निर्माण में अंगूर की भूमिका प्रमुख होती है। यह महिलाओं के लिए अत्यन्त उपयोगी फल है।

पके अंगूर के फल से प्राप्त रस में 10 से 30 प्रतिशत शर्करा पाई जाती है जो ग्लूकोज़ के रूप में ही विद्यमान होती है। अंगूर के रस में पाई जाने वाली यह शर्करा बहुत आसानी से पच जाती है, पाचन प्रक्रिया पर इसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। अंगूर में विटामिन 'बी' के साथ ही शरीर के लिए उपयोगी टार्टरिक एसिड, पोटाश और टार्टराइड भी पाया जाता है। आंतों एवं गुदा रोगों में इसका सेवन अत्यन्त उपयोगी रहता है।

प्राकृतिक चिकित्सकों ने शरीर के स्वास्थ्य को बनाये रखने में अंगूर को अत्यन्त उपयोगी बताया है। प्राकृतिक चिकित्सा प्रक्रिया में निर्धारित अवधि तक अंगूर के सेवन से शरीर को नई ऊर्जा की आपूर्ति की विधि का विकास किया गया है। प्राकृतिक चिकित्सा में अंगूर के इस प्रमाणबद्ध सेवन प्रक्रिया को 'अंगूरकल्प' नाम दिया गया है। अंगूरकल्प की इस हानिरहित सेवन विधि को प्राकृतिक चिकित्सक धूम्रपान से छुटकारा दिलाने में प्रयोग करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सकों का मत है कि अंगूर के रस के नियमित प्रातःकालीन सेवन से धूम्रपान तथा पान, तम्बाकू, जर्दा और सुबह चाय, काफी

गावों को जिला मुख्यालयों में जोड़ा जाना

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (पीएमजीएसवाई) वर्ष 2000–01 से केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के रूप में कार्यान्वित की जा रही है जिसे केन्द्र द्वारा सौ फीसदी वहन किया जा रहा है। पीएमजीएसवाई का मुख्य उद्देश्य मैदानी क्षेत्रों में 500 या इससे अधिक की आबादी वाले क्षेत्रों, पहाड़ी राज्यों, रेगिस्तानी इलाकों तथा जनजातीय क्षेत्रों में 250 या उससे अधिक की आबादी वाली संपर्क विहीन बसावटों को बारहमासी सड़क संपर्क मुहैया कराना है। नवीनतम आकलनों के अनुसार इस योजना के अंतर्गत एक लाख उनहत्तर हजार बसावटें शामिल किए जाने योग्य हैं। पीएमजीएसवाई योजना के 11वीं पंचवर्षीय योजना में भी जारी रहने की संभावना है। (पसूका)

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना का क्रियान्वयन

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एनआरआईजीए) 2 फरवरी, 2006 को 200 निर्धारित जिलों में लागू किया गया था तथा चालू वित्तीय वर्ष के दौरान 130 और जिलों में इसका विस्तार किया गया है। इसीलिए, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एनआरईजीए) इस समय देश के 330 जिलों में परिचालन में है। वर्ष 2006–07 के दौरान, कुल 3.78 करोड़ परिवारों को जॉब कार्ड जारी किए गए थे। चालू वित्तीय वर्ष (अक्टूबर, 2007 तक) के दौरान कुल 5.70 करोड़ परिवारों को जॉब कार्ड जारी किए गए हैं।

वर्ष 2006–07 के दौरान कुल 2.10 करोड़ परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराया गया था तथा वर्ष 2007–08 (अक्तूबर, 2007 तक) के दौरान राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एनआरईजीए) के अंतर्गत 2.11 करोड़ परिवारों को रोजगार दिया गया है।

विभिन्न राज्यों से प्राप्त रिपोर्टों के अनुसार कुल 2,43669 कर्मचारी नियुक्त किए गए हैं जिनमें ग्राम पंचायतों में ग्राम सेवक/सहायक तथा ब्लॉक, जिला तथा राज्य स्तर पर तकनीकी और गैर-तकनीकी कर्मचारी शामिल हैं। (पसूका)

भारत-निर्माण के अंतर्गत मकानों का निर्माण

सरकार ने वर्ष 2005–09 के चार वर्षों के दौरान 60 लाख मकान बनाने का वादा किया था। प्रत्येक वर्ष औसतन 15 लाख मकान बनाये जाने होते हैं। वित्तीय वर्ष 2005–06 के दौरान 15 लाख 52 हजार मकान बनाए गए जबकि लक्ष्य 14 लाख 41 हजार मकान बनाने का था। वर्ष 2006–07 के दौरान 14 लाख 98 हजार मकान बनाए गए जबकि लक्ष्य 15 लाख 33 हजार मकान बनाने का था। अतः भारत–निर्माण कार्यक्रम के पहले 2 वर्षों के दौरान 30 लाख 50 हजार मकान बना लिए गए हैं। इसके अलावा चालू वित्तीय वर्ष 2007–08 के दौरान 21 लाख 27 हजार मकानों के निर्माण के लिए आईएवाई के अंतर्गत राज्यों/डीआरडीए के लिए 40 अरब 32 करोड़ 70 लाख रुपये आवंटित किए गए हैं। इस लक्ष्य की तुलना में राज्य सरकारों से प्राप्त अब तक रिपोर्टों के अनुसार 7 लाख 60 हजार मकान पहले ही बना लिए गए हैं। (पसूका)

की लत छूट जाती है। 'अंगूरकल्प' के विषय में प्राकृतिक चिकित्सकों का तर्क है कि प्रातःकाल अंगूर के रस के सेवन से लाल रक्त कणों का तेजी से निर्माण होता है, जिससे शरीर के रक्त संचार में विशेष सक्रियता आती है, घ्राण एवं श्रवण क्षमता में वृद्धि होती है।

आंतों में लम्बे समय तक अनावश्यक द्रव्यों की उपस्थिति विष का निर्माण करने लगती हैं। जिससे आंतों में कई तरह के विषाणु पैदा हो जाते हैं, जो

रक्त की कमी को दूर करने में सहायक काले अंगूर

आंतों में पाये जाने वाले म्यूकस मेम्बरेन के माध्यम से शरीर में फैलकर आंत, किडनी और आंखों को क्षति पहुंचाते हैं। प्रातःकाल लिया जाने वाला अंगूर का रस आंतों में रुके हुए इस प्रकार के हानिप्रद विषाक्त तत्वों को बाहर निकाल कर आंतों को विषरहित, स्वच्छ और निरोग बना देता है।

पेट से सम्बन्धित रोगों में अंगूर का फल अत्यन्त उपयोगी है। मुंह में छाले, पेट में जलन, खाना खाने के बाद पेट में

भारीपन और जलन तथा भोजन के ठीक से न पचने की शिकायत में 100 ग्राम अंगूर या 50 ग्राम रात में भिगोई गई किसमिस या मुनक्के को सुबह अच्छी तरह मसल कर छान लें। उसमें 10 ग्राम सौंफ और स्वाद के अनुसार मिसरी मिलाकर नियमित प्रातःकाल सेवन से उपरोक्त समस्याओं से राहत मिलती है। 10 ग्राम मुनक्का 5 ग्राम आंवले के साथ रात में एक कप पानी में भिगो दें, सुबह जब ये दोनों फूलकर मुलायम हो जायें तो इन्हें अच्छी तरह मसल कर मिसरी मिलाकर पीने से पेट की जलन शान्त होती है। कब्ज के रोगी को रात में सोते समय मुनक्के को दूध में उबालकर या 100 ग्राम अंगूर खाकर ऊपर से एक गिलास गुनगुना दूध लेने से सुबह शौच खुलकर होती है तथा कमजोरी से आने वाला चक्कर रुक जाता है, शरीर को ताकत मिलती है, काम में रुचि पैदा होती है।

गर्मी के मौसम में धूप में भाग–दौड़ करने वाले लोगों को धूप लगने के कारण होने वाले सिर दर्द में अंगूर का रस लेना चाहिए, इससे सिर दर्द में आराम होता है तथा धूप के कारण हुई शारीरिक तत्वों की क्षति पूरी हो जाती है, जिससे शरीर में फिर से शक्ति का संचार होता है। आधासिरी (अधकपारी) के लिए धनिया और किशमिश को रात में एक साथ भिगो कर सुबह उस जल को छानकर पीना चाहिए।

बुखार के कारण जब खाने में कोई चीज रुचिकर न लगे और जी मिचलाता हो तब मुनक्के को तवे पर गर्म करके उसमें नमक और काली मिर्च मिलाकर रोगी को देनी चाहिए। इससे रोगी के मुंह का फीकापन दूर होकर स्वाद बदल जाता है और मिचली बन्द हो जाती है तथा रोगी को ताकत भी मिलती है। ज्वर से होने वाले विभिन्न शारीरिक उपद्रवों में अंगूर और उसका रस शरीर के ताप को कम करके भूख का शमन कर मुंह के फीकेपन और गर्मी को दूर करता है। सूखी खांसी में किशमिश के साथ मिसरी के टुकड़े को चूसना लाभकारी रहता है। क्षय रोगी को अंगूर या मुनक्का लाभ पहुंचाता है।

शरीर के किसी भी अंग से रक्तस्राव होने पर शहद के साथ किशमिश लेना चाहिए। गर्म भोजन या पेय पदार्थ ग्रहण करने के कारण जब मूत्रत्याग में अवरोध या जलन पैदा हो जाये तब अंगूर के रस के साथ मिसरी और छोटी इलायची मिलाकर लेना चाहिए। आंखों में जलन होने पर भिगोये गए किशमिश को मसल कर उसका पानी दिन में तीन–चार बार पीना चाहिए। अंगूर के लता की भस्म ज्यादा पेशाब आने पर शहद या जल के साथ लेना चाहिए। अंगूर की लकड़ी की भस्म अंगूर के सिरके में मिलाकर बर्रे के काटने पर लगाने से राहत मिलती है।

जिस व्यक्ति को शराब, भांग, गांजा या धतूरे का नशा चढ़ गया हो, उसे 50 ग्राम मीठे अंगूर के साथ काली मिर्च, जीरा और नमक एक साथ पीस कर पिलाना चाहिए।

उपयोगी अंगूर को हिन्दी में –अंगूर, दाख; संस्कृत में–द्राक्षा, स्वादुफला, मृद्वीका, हारहुरा, गोस्तनी; बंगला में–मनेका; मराठी में–द्राक्षे; तेलगू में–द्राक्षा; गुजराती में–द्राक्ष; फारसी में अंगूर; अरबी में हुबुस जजीव तथा अंग्रेजी में ग्रेप (Grape) कहा जाता है।

वर्जनाः अंगूर की तमाम विशेषताओं के बावजूद विशेषज्ञों ने इसे मधुमेह रोगियों को न देने की सलाह दी है।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार एवं लोकोत्थान समिति से सम्बद्ध हैं।)

हमारे आगामी अंक

फरवरी 2008 अंक ग्रामीण गरीबी उन्मूलन व रोजगार पर केंद्रित है ।

मार्च 2008 अंक ग्रामीण महिला सशक्तिकरण व महिलाओं से संबंधित विषय पर केंद्रित है ।

अप्रैल 2008 अंक वार्षिक बजट (वर्ष 2008–09) व आर्थिक नीतियों पर केंद्रित है ।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण विकास, कृषि व स्वास्थ्य से संबंधित लेख भी इनमें शामिल किए जाएंगे। उपरोक्त विषयों पर सारगर्भित लेख व फोटो हमें भेजे जा सकते हैं। पत्रिका के प्रकाशन की तिथि आगामी माह से एक माह पूर्व होती है। अतः प्रकाशन सामग्री एक माह पूर्व हमें मिल जानी चाहिए।

प्रकाशन विभाग के विक्रय केंद्र : दिल्ली सूचना भवन, सीजीओ, काम्प्लैक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली–110003, हॉल न. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली– 110054; **मुंबई** 701 बी विंग, 7वीं मंजिल, केंद्रीय सदन बेलापुर, नवी मुंबई– 400614; **कोलकाता** 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कोलकाता–700069; **चेन्नई** 'ए' विंग, राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई– 600090; **तिरुअनंतपुरम** प्रेस रोड, निकट गवर्मैंट प्रेस, तिरुअनंतपुरम – 695001; **हैदराबाद** ब्लॉक नं. 4 प्रथम तल, गृहकल्प काम्प्लैक्स, एम.जी. रोड, नामपल्ली, हैदराबाद–500001; **बंगलौर** प्रथम तल, एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर –560034; **पटना** बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना–800004; **लखनऊ** हाल नं.1, द्वितीय तल, केंद्रीय भवन, सैक्टर एच, अलीगंज, लखनऊ–226024; **अहमदाबाद** अम्बिका काम्प्लैक्स, प्रथम तल, पालदी, अहमदाबाद– 380007; **गुवाहाटी** हाउस नं. 07, चेनीकुथी , न्यू कालोनी, के. के.बी. रोड, गुवाहाटी – 781003.

DSIR

TePP

TIFAC

Ministry of Science and Technology

Technopreneur Promotion Programme (TePP)

Call for Proposals

TePP is the programme to extend financial support to independent innovators for converting their innovative ideas into working prototypes/models. Over 7000 raw ideas have been accessed, 1500 proposals evaluated and 200 supported. TePP now invites proposals on the following:

PROGRAMME	ELIGIBILITY
TePP Phase I :	
1. Technopreneurship Support(TS)	Any independent innovator
2. TePP Project Fund (TPF)	Any independent innovator

Interested? Contact:

The Head
Technopreneur Promotion Programme (TePP)
Ministry of Science & Technology
Department of Scientific & Industrial Research (DSIR)
Technology Bhawan, New Mehrauli Road
NEW DELHI 110 016
FAX : 011-2696 0629 **E-mail**: asrao@nic.in

Important:

1. *TePP is a common programme of DSIR and TIFAC (DST).*
2. Proposals of grass root innovators and school children are supported under NIF and not TePP.
3. Faculty research and student projects are not supported under TePP, but faculty start-ups and student entrepreneurs are eligible provided they possess technology commercialization rights.
4. dot.com start-ups are not supported under TePP but start-ups with innovative delivery models of S&T to rural beneficiaries are eligible for support.
5. Innovators are advised to protect their intellectual property rights by submitting provisional application before revealing details in application, essential for evaluation. For approved projects, subsequent patenting costs including international patenting in two countries are eligible for support.
6. *The **application blank** appropriate to the category may be downloaded from DSIR Website: http://www.dsir.gov.in.*
7. You may send an advance copy of the proposal by e-mail to asrao@nic.in
8. Innovators are encouraged to submit proposals through the TePP Outreach Centers. Their addresses and contact details are given on the web page. All outreach centers provide counseling and mentoring, some provide incubation facilities too. There will be no counseling sessions in DSIR/TIFAC.
9. Canvassing in any form is liable for summarily rejection of the application.
10. The decision of the Ministry will be final. ***No correspondence shall be entertained on the proposals rejected.***

We share your dreams

KH-01/07/05

आर. एन./708/57
डाक–तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. (एस)–05/3164/2006–08
आई.एस.एस.एन. 0971–8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस. दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)–55/2006–08

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2006-08
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2006-08
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi

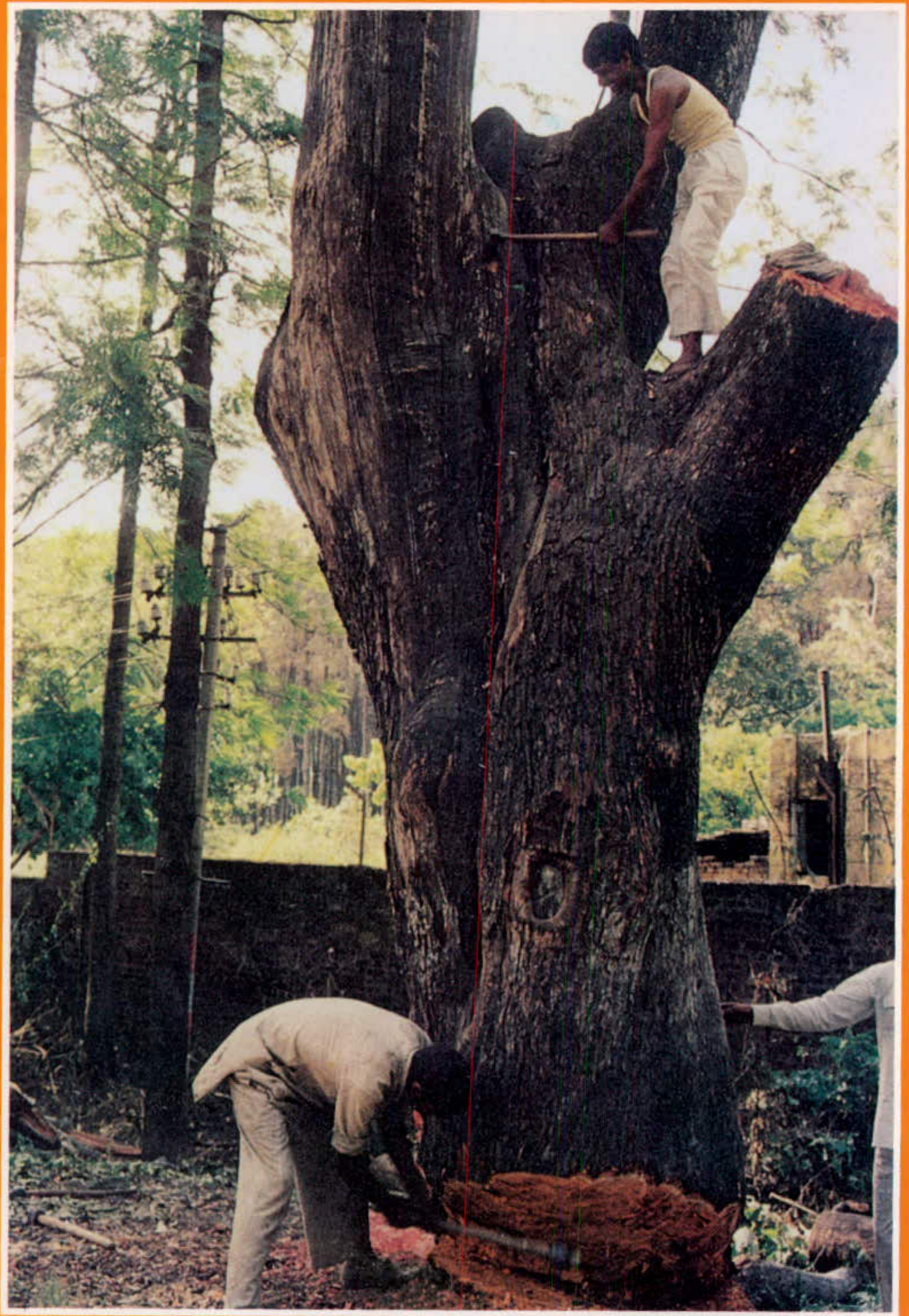

विकास की होड़ – कटते पेड़

प्रकाशक और मुद्रक : वीना जैन, अपर महानिदेशक (प्रभारी), प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली–110003.
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया-II, नई दिल्ली–110 020 : संपादक : कैलाश चन्द मीना